सबला

सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली
वर्ष 8 : अंक 1 अप्रैल-मई, 1995

सहयोग मंडल
कमला भसीन
मणिमाला
ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

संपादिका
शारदा जैन

उप-संपादिका
वीणा शिवपुरी
जुही जैन

चित्रांकन
बिंदिया थापर (कवर)
जॉयल गिल

वितरण
प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवा ग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

इस अंक में

एक इंसान हूं... बस (हमारी बात) 1

महिला समाख्या—शक्ति की ओर 2
—कमला भसीन

गज़ब किया रामकली ने (कविता) 8
—निलय उपाध्याय

इक्कीसवीं सदी की ओर... 9
—सुहास कुमार

अन्नपूर्णा—कहानी शालिनी ताई की 11
—वीणा शिवपुरी

घरों से बेघर हुए लोग 13
—मणिमाला

सुनोगी मेरी कहानी 16
—जुही

कोई ठग न सके 18
—साभारः बिहार महिला समाख्या

पिटारा कानून का 20
—आभा जोशी

ईसाई औरतों का संघर्ष 22
—वीणा

खिलखिलाएगी मेरी बिटिया 24
—श्रीकांत वर्मा

हारिए न हिम्मत... 25
—जुही

साथिनें संघर्ष जारी रखेंगी 27
—मणि

एक-एक से ग्यारह भले 31

राजनीति में औरतों की भागीदारी 33

तुमकुर का पंचायती राज 34
—विशेष संवाददाता

एक प्रार्थना—कोख से 36
—मनिषा वर्मा

एक इंसान हूं...बस।

सीता!
सावित्री!
द्रौपदी!
अनसुइया!
नहीं...मैं
इनमें से
कोई नहीं
मैं एक
औरत हूं
एक इंसान
अपने युग की
समस्याओं से
जूझती हुई
लक्ष्मण रेखाओं को
नकारती हुई
पिंजड़ों को
तोड़ती हुई
तड़फड़ाती,
कशमशाती
उड़ जाने को
बेताब
एक लहूलुहान
इंसान..।

मणिमाला

महिला समाख्या
महिला शक्ति की ओर

कमला भसीन

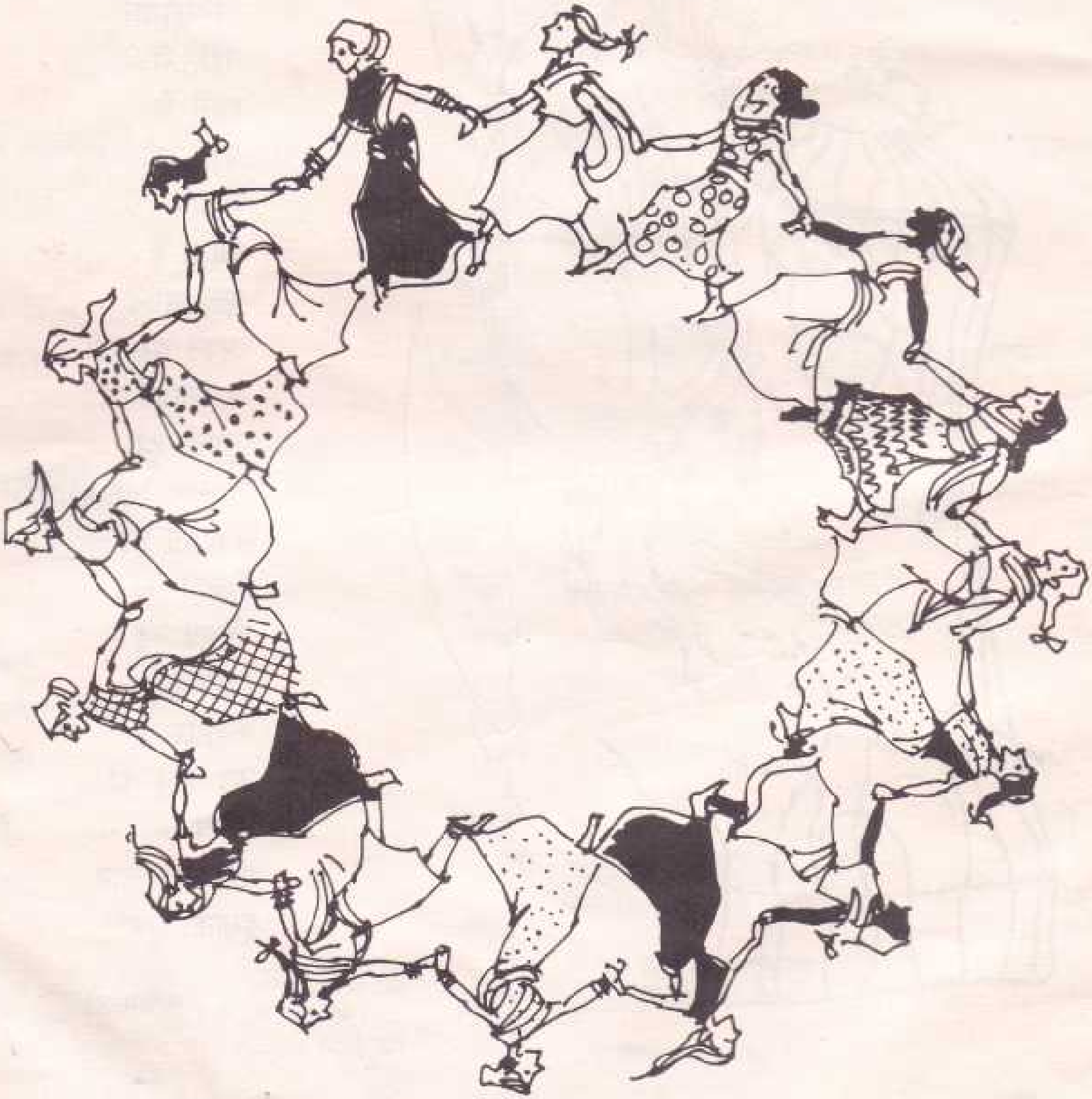

अप्रैल की 19, 20 और 21 तारीख को मैं बिहार राज्य की राजधानी पटना में थी। वहां मैं महिला समाख्या बिहार की मेहमान थी। उन्होंने मुझे अपनी कार्यकर्ताओं की ट्रेनिंग के लिए बुलाया था। मैं खुशी-खुशी वहां पहुंच गई क्योंकि मेरे मन में महिला समाख्या प्रोग्राम को जानने, समझने और उससे कुछ सीखने की बहुत इच्छा थी।

पटना पहुंच कर सबसे पहले तो मैंने समाख्या शब्द का सही मतलब पूछा। समाख्या शब्द कब से सुन रही हूं, पर उसका मतलब अभी तक ठीक से नहीं मालूम था। महिला समाख्या बिहार की डायरेक्टर सिस्टर सुजिता ने मुझे मतलब समझाया। **समाख्या दो शब्दों से मिलकर बना है। सम का अर्थ है समान और आख्या का अर्थ है संवाद या बातचीत। समाख्या का अर्थ हुआ समान स्तर या समान सोच के लोगों के बीच बातचीत। इसका एक अर्थ और भी लगाया जा सकता है—समानता के लिये बातचीत या प्रयत्न।**

महिला समाख्या एक योजना का नाम है जो भारत सरकार का शिक्षा विभाग चला रहा है। यह योजना देश के पांच राज्यों में चल रही है—उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश। इस कार्यक्रम में शुरू से ही सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं की भागीदारी रही है। ख़ासतौर से ट्रेनिंग का सारा काम महिला संस्थाओं को सौंपा गया। हालांकि यह योजना सरकारी है, राज्य स्तर पर इसे चलाने के लिए एक अलग से सोसायटी बनाई गई। इस सोसायटी में कुछ सरकारी लोग हैं और बाकी सब उस राज्य के तजुर्बेकार सामाजिक कार्यकर्त्ता, अच्छी महिला विद्वान आदि हैं।

अलग सोसायटी इसलिए बनाई ताकि कार्यक्रम को चलाने में आज़ादी व लोच रहे, ताकि कार्यक्रम सरकारी तंत्र में फंस कर दम न तोड़ दे, और कार्यक्रम को सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं, दोनों का सहयोग मिले।

औरतों की सामूहिक शक्ति

यह कार्यक्रम आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रूप से पिछड़ी और दलित महिलाओं के लिए है। इसका पूरा ज़ोर औरतों की सामूहिक शक्ति बढ़ाने पर है। औरतों के संगठन या समूह बनाना इसका पहला काम है। इस प्रोग्राम ने कुछ खास आदर्शों या तरीकों को अपनाने पर ज़ोर दिया है। मिसाल के तौर पर:

— गांव की औरतों पर बाहर से कुछ थोपा न जाए। वे स्वयं अपने समूह बनायें, अपने काम का स्वरूप और रफ्तार तय करें।

— कार्यक्रम के कार्यकर्ता व अफ़सर मददगार हों, संचालक न हों। संचालन शुरू से ही औरतें खुद करें।

— गांव स्तर पर योजना बनाना, सब फ़ैसले लेना, योजना का मूल्यांकन करना, सब में औरतों की भागीदारी हो।

— शिक्षा का अर्थ हो सवाल करना, समझना, परिवर्तन के लिए ठोस कदम उठाना, न कि औरों के बनाए और दिए गए ज्ञान को अपना लेना। शिक्षा केवल साक्षरता नहीं है। औरतें अगर साक्षरता से शुरुआत नहीं करना चाहतीं, पहले कुछ और करना चाहती हैं तो ज़रूर करें। औरतों के अपने ज्ञान, हुनर का

मान हो और उन्हें बढ़ावा दिया जाए।

— केवल ऐसे कार्यकर्ताओं को चुना जाए जो गरीब औरतों की इज्ज़त करते हों और उनके साथ उठने-बैठने को तैयार हों।

सखी भी, सहयोगिनी भी

महिला समाख्या में बराबरी का बहुत ध्यान रखा गया है। कार्यकर्ताओं के लिए जो नाम चुने हैं वे भी इस कार्यक्रम की सोच को स्पष्ट करते हैं। हर दस गांवों के लिए है एक सहयोगिनी। सुपरवाईज़र नहीं—सहयोगिनी। सब से पहले सहयोगिनिओं का ही चुनाव और ट्रेनिंग होती है। उसी इलाके की पढ़ी-लिखी, कर्मठ औरतों को चुना जाता है।

इस कार्यक्रम के उद्देश्यों, काम के तरीकों को समझ कर वे गांवों में मज़दूर वर्ग की औरतों से बातचीत शुरू करती हैं। उनके साथ मिल-बैठ कर बात करने, औरतों की स्थिति, गांव की समस्याओं पर चर्चा करने का सिलसिला शुरू करती हैं। उन्हें अपना समूह बनाने का सुझाव देती हैं। उनके समूह को मदद करने का वादा भी करती हैं। जब समूह बन जाता है तो महिलाएं अपने समूह में से ही एक या दो औरतों को चुनती हैं जो समूह के चलाने की ज़िम्मेदारी लेती हैं।

समूह की इन नेताओं या अगुवाओं को नाम दिया है सखी। ग्रुप लीडर नहीं—सखी। नाम सखी होगा तो बर्ताव भी वैसा ही होगा। महिला समाख्या में सखियों और सहयोगिनिओं की खास भूमिका है। इसीलिए इस कार्यक्रम की शुरुआत में सबसे ज्यादा ज़ोर दिया जाता है सखियों और सहयोगिनिओं की ट्रेनिंग और तैयारी पर। ये दोनों ठीक से तैयार होती हैं, चेतन और कर्मठ होती हैं तो काम चल पड़ता है।

तेज़ रफ्तार

पटना में बिताए तीन दिनों में मैंने महिला समाख्या बिहार को कुछ और नज़दीक से देखा और समझा। ब्यालीस औरतें जो ट्रेनिंग में आईं थीं, उन सब से कुछ सुना और सीखा। रात को ट्रेनिंग के बाद उनकी रिपोर्टें व किताबें भी पढ़ीं। चार-पांच अच्छी किताबें हैं इस प्रोग्राम के बारे में, एक दो अंग्रेजी में हैं, बाकी हिन्दी में। दो छोटी-छोटी पत्रिकायें भी निकालते हैं ये। हर ज़िले में भी एक छोटी-सी पत्रिका छापी जाती है। धीरे-धीरे काफ़ी लिखित सामग्री तैयार हो गई है। अगर आप में से कोई इस कार्यक्रम के बारे में अधिक जानकारी चाहते हैं तो पत्र लिख कर मंगवा सकते हैं।

महिला समाख्या बिहार, बिहार शिक्षा परियोजना का हिस्सा है। बिहार शिक्षा परियोजना का उद्देश्य है निरक्षरता को कम करना, हर बच्चे को प्राथमिक शिक्षा देना, महिलाओं की शिक्षा पर पूरा ध्यान देना और शिक्षा को समाज से जोड़ना और उसे समाज बदलने का साधन बनाना।

सिस्टर सुजिता का मानना है कि बिहार शिक्षा परियोजना के साथ जुड़े होने के कारण महिला समाख्या, बिहार और तेज़ी से बढ़ पाया है। आपके मन में भी शायद यह प्रश्न उठ रहा हो कि ये 'सिस्टर' (नन) इस प्रकार के प्रोग्राम की डायरेक्टर कैसे? बिहार के इस प्रोग्राम में एक 'सिस्टर' ही नहीं, तीन-तीन सिस्टर से मिली मैं।

यही खासियत है इस कार्यक्रम की। जहां भी

अच्छे कर्मठ, तजुर्बेकार, ईमानदार लोग मिलें उन्हें साथ मिला लो। और आप पाओगे कि एक अच्छे प्रोग्राम से सभी जुड़ना चाहेंगे। सिस्टर सुजिता "सिस्टर्ज आफ नौत्रे डाम" समूह की हैं। वह केरल राज्य की हैं, पर बरसों से बिहार में काम कर रही हैं। कई बरस गांवों में रहीं। मज़दूर वर्ग और शोषित जातियों के साथ शिक्षा, संगठन, महिला शक्ति के इनके काम का अनुभव देख कर उन्हें महिला समाख्या का कार्य भार सौंपा गया।

कर्मठ कार्यकर्ताओं की जमात

जिन 42 कार्यकर्ताओं के साथ मैंने तीन दिन की कार्यशाला की वे भी कम नहीं थीं। उन में भी चमक थी, काम करने की लगन थी हालांकि वे भी उसी समाज से हैं जहां लड़कियों और औरतों पर अनगिनत बंधन होते हैं। ये सब बीस वर्ष से चालीस वर्ष के बीच की थीं। अधिकतर तीस वर्ष से कम थीं। कुछ को छोड़ कर सभी कॉलेज पूरा कर चुकी थीं। मुझे लगा कि मैं एक सुन्दर बगीचे में हूं, जहां अलग-अलग तरह के सुन्दर पेड़ हैं।

ये सारी महिलाएं ज़िला स्तर पर प्रशिक्षक या 'कोर टीम' की सदस्य हैं। यानि ये वो समूह है जो सहयोगिनिओं और सखिओं की मदद करता है, जिले में नए केन्द्र और कार्यक्रम शुरू करता है। कार्यक्रम की प्रकिया और विकास का लेखा-जोखा रखता है।

इनके साथ तीन दिन बैठ कर बहुत मज़ा आया। सुबह साढ़े आठ से देर रात तक बातचीत चलती थी। मुझे काफी बोलना पड़ता था पर थकान महसूस नहीं होती थी। सवाल पूछने वाले अच्छे हों तो जवाब देने वालों को भी मज़ा आता है। उनके साथ मैं भी मगन रही तीन दिन। जम कर और खुल कर हर विषय पर बातचीत हुई। वहां पर मुझे अपना प्रिय शेर याद आया—

जो इल्म की इबारत चेले की आंख में थी
बस हम उसी को पढ़ कर उस्ताद हो गये हैं

कुछ आंकड़ों पर एक नज़र

बिहार, जो अपने विश्वविद्यालयों के लिए मशहूर था आज शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है। यहां पुरुष साक्षरता दर 52 फीसदी है और महिला साक्षरता 23 फीसदी है। यानि दस में से सात औरतें आज भी पढ़ लिख नहीं सकतीं। कुछ गांवों में तो एक भी पढ़ी-लिखी औरत नहीं मिलती।

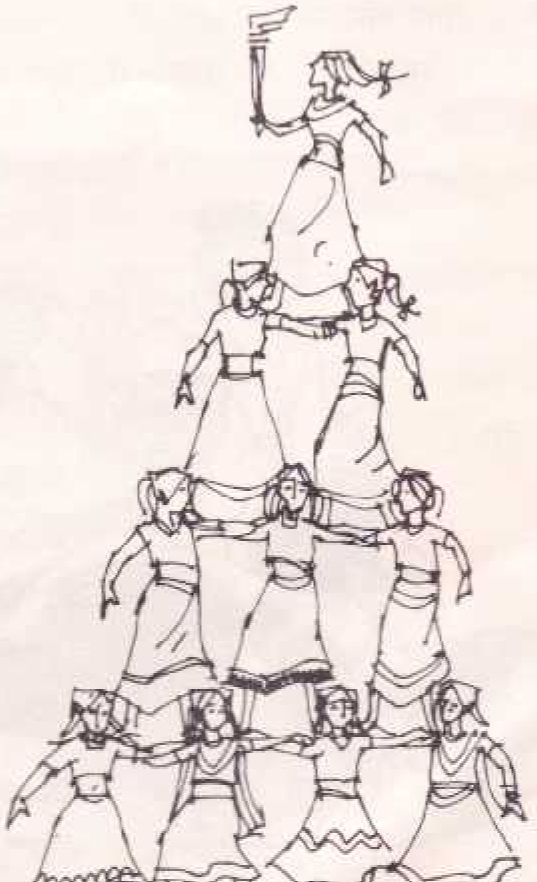

महिलाओं की अपनी पहचान व शक्ति

महिला समाख्या कार्यक्रम का मक़सद या उद्देश्य है शिक्षा के ज़रिए औरतों की ताक़त बढ़ाना और बनाना, उनके पिछड़ेपन को मिटाना। बरसों से औरतों को नीचे रखने का जो सिलसिला चला है उसे ख़त्म करने की कोशिश करना। इसके अन्य उद्देश्य हैं—

— औरतों के मन में उनके अपने लिए इज्ज़त बढ़ाना और उनका हौसला बढ़ाना।
— उन्हें अपने खुद के काम और योगदान की क़ीमत और अहमियत को समझने का मौक़ा देना।
— चेतन और सक्षम औरतों की एक जमात बनाना जो महिला विकास की अगवानी कर सकें।

बिहार की जो बात ज्यादा भयानक है वह है औरतों की लगातार गिरती संख्या। आज से नब्बे साल पहले वहां 1000 पुरुषों पर 1060 औरतें थीं पर आज 1000 पुरुषों पर केवल 911 औरतें हैं। इन आंकड़ों से महिलाओं की गिरती हुई स्थिति साफ़ नज़र आ रही है।

ऐसे माहौल में महिला समाख्या स्त्रियों को शिक्षित और सशक्त बनाने का प्रयत्न कर रही है। औरतों की स्थिति पर जगह-जगह बहस शुरू कर रही है। हर जगह यह संदेश पहुंचा रही है कि वह समाज आगे नहीं बढ़ सकता जहां औरतों को नकारा और दबाया जाता है।

महिला समाख्या बिहार 1992 में शुरू हुआ। यह बिहार के छः ज़िलों में काम कर रहा है। तीन साल में ही यह कार्यक्रम लगभग 1500 गांवों में पहुंच गया है। जनवरी 1995 में 1002 महिला

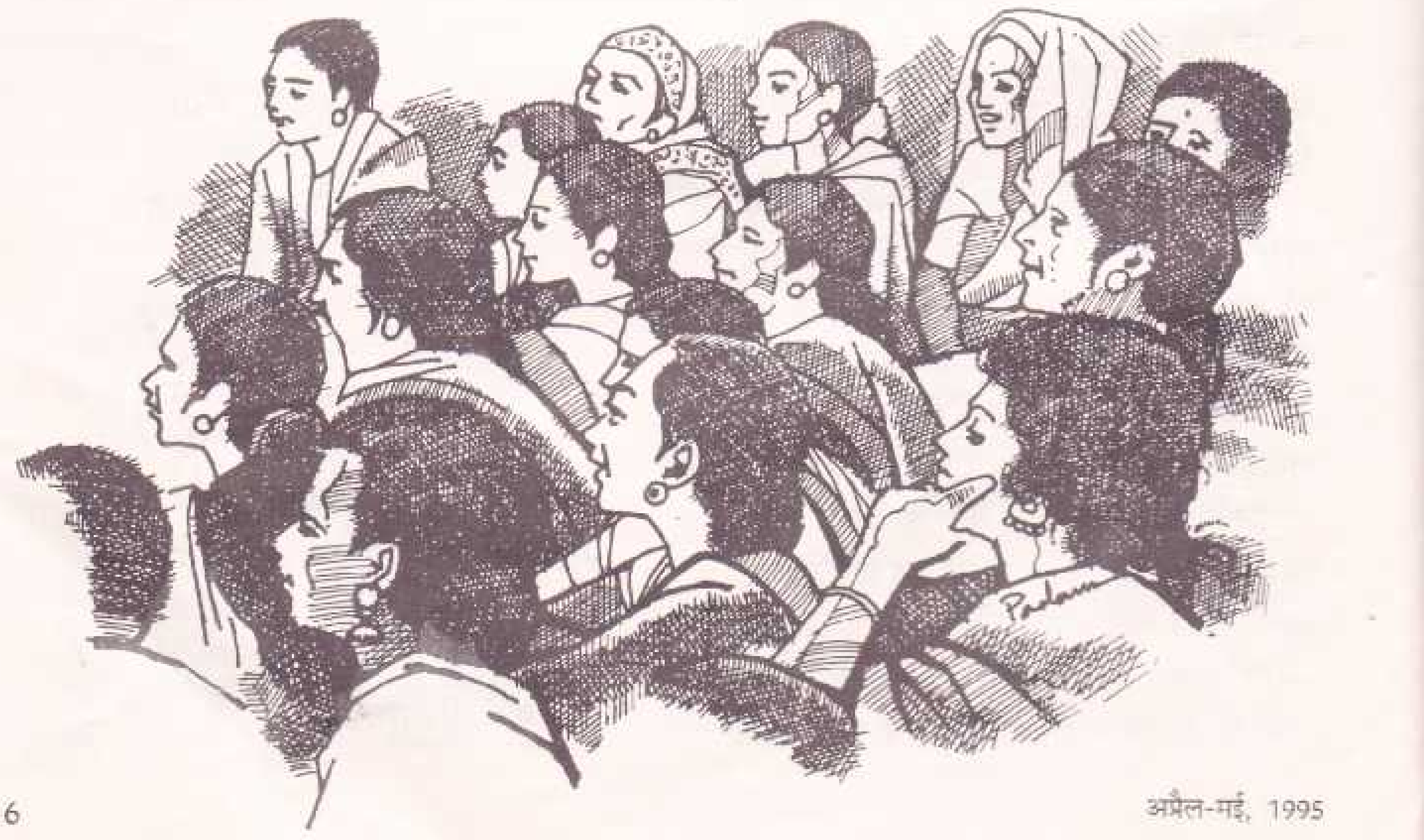

समूह बन चुके थे जिनमें 24,079 सदस्य थीं।

जगजगी केंद्र

इन महिला समूहों के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षा केंद्र भी खोले गए हैं जिन्हें ये *जगजगी* केंद्र कहते हैं। जगजगी एक मज़ेदार नाम है। अर्थ कई हैं इसके। जग के प्रति जगी बालिका या महिला या जग को जगाने वाली। जनवरी 1995 में 273 जगजगी केंद्र चल रहे थे। जिनमें करीब साढ़े सात हज़ार लड़कियां, महिलायें व कुछ लड़के पढ़ रहे थे।

औरतों व लड़कियों में नेतृत्व का विकास करने व उन्हें शिक्षा देने के लिए महिला समाख्या ने छः महिला शिक्षण केंद्र भी शुरू किए हैं जहां तीन से बारह महीने का प्रशिक्षण दिया जाता है। छात्राएं वहीं छात्रावास में रहती हैं, पढ़ती हैं, खेलती-कूदती हैं, हंसती गाती हैं। यहां उन्हें पांचवी से दसवीं कक्षा तक की परीक्षा देने के लिए तैयार किया जाता है।

जब औरतें इतने काम करेंगी तो उन्हें अपना 'घर' तो चाहिए ही। ऐसी जगह चाहिए जहां वो बैठ सकें, पढ़ सकें, अपनी बैठकें कर सकें, हंस-गा सकें। इसीलिए इस कार्यक्रम में महिला कुटीर बनाई जा रही हैं। कुछ महिला कुटीर औरतों ने अपनी मेहनत से बना भी ली हैं। सत्तर गांवों में इन कुटीरों के लिए ज़मीन ले ली गई है।

संगठन में शक्ति

अपने संगठन की शक्ति के बल पर महिला समूह गांव के लिए तरह-तरह के काम कर रही हैं। कहीं पर राशन की दुकान की गड़बड़ रुकवाई है तो कहीं चीनी की तस्करी। कहीं पर बलात्कार करने वाले पुरुषों को पकड़ा है तो कहीं औरतों की मारपीट रुकवाई है। कुछ समूहों ने जवाहर रोज़गार योजना में गांव के कामों के ठेके लिए हैं। एक ठेका लिया बांध बनाने का। पौने तीन लाख का ठेका जो किसी ठेकेदार को जाता, जो आधा पैसा खाता और बेकार बांध बनाता। औरतों ने काम भी पक्का किया, पूरी मज़दूरी भी दी गांव की औरतों को और एक नए तरीके की शुरुआत की। अब और समूह भी छोटे बांधों, सड़कों, बस प्रतीक्षालयों के ठेके ले रही हैं।

महिला समाख्या, बिहार का काम देख कर मैं निहाल हुई। अब और राज्यों में जाकर महिला समाख्या के काम को देखने की इच्छा जगी है। अगर गई तो लौट कर आप को ज़रूर रपट दूंगी। □

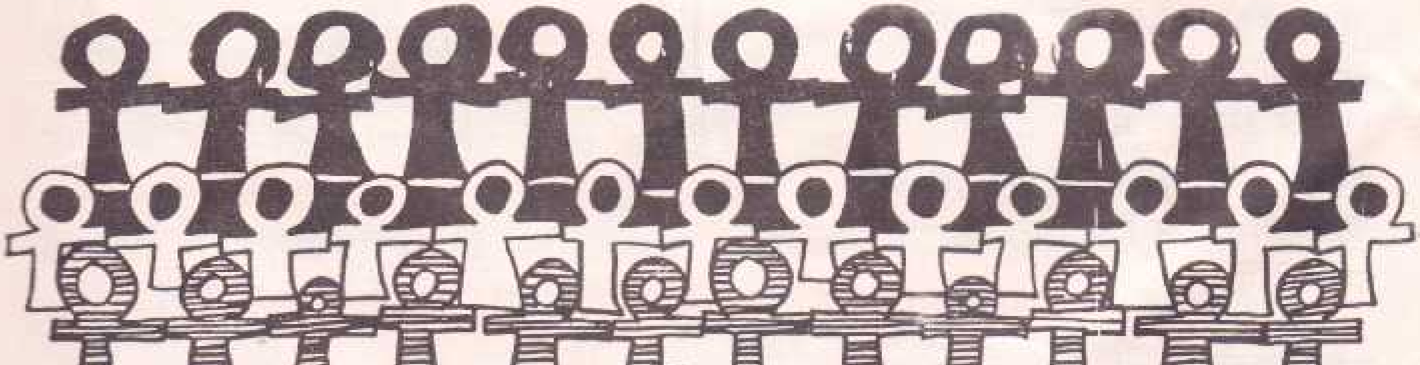

गजब कर दिया रामकली ने

पढ़ी-लिखी मैट्रिक पास
तब भी गऊ थी रामकली
मुंह उठाकर नहीं बोलती, सिर नहीं चढ़ती
गुस्सा आता तब भी चुप रहती
उसके आंगन में काई नहीं लगी कभी
शीशे की तरह चमकता है
माटी का घर
गंध से अनुमान लगा लेती स्वाद का
कभी कम या ज़्यादा नहीं हुआ
रसोई में नमक
उसके चेहरे से छलक-छलक जाता प्यार
घर में खुशी हो तो भर आती
उसकी आंख
जागती तो पांव छू लेती
सोने जाती तो सास से पूछ लेती
सबने कहा था—दस घर दुश्मन को मां
बहू मिले ऐसी हो घर-लक्ष्मी
हाय राम!
लीप-पोत दिया, अपना सारा गुण
नाक कटवा दी ससुर की, पति ने मना किया
नहीं मानी, अकेले निकली
और सैकड़ों मर्दों के बीच डाल आई
अपना वोट
खासकर इस गांव में
जहां औरतों ने आज तक वोट नहीं डाला
यह तो गजब कर दिया
रामकली ने

—निलय उपाध्याय

इक्कीसवीं सदी की ओर महिलाओं के बढ़ते क़दम

सुहास कुमार

साक्षरता आंदोलन चाहे महिलाओं को पूर्ण साक्षर बनाने में सफल न हुए हों पर गांव की महिलाओं को घर की चार-दीवारी से बाहर निकालने में अवश्य सफल हुए हैं। उनमें एक नई चेतना व जागरूकता आई है। यही नहीं, हर स्तर पर यह महसूस किया जा रहा है कि महिलाओं के आगे बढ़े बिना देश आगे नहीं बढ़ सकता। 1993 में हुए पंचायती राज एक्ट के 73वें व 74वें संशोधन में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण दिया जाना इसका स्पष्ट उदाहरण है।

गांववाले कहते हैं, ''पुरुषों को तो कई सालों से देख रहे हैं। अब महिलाएं आगे आई हैं तो गांव की उन्नति में अपना जौहर दिखाएंगी ही। मौका हाथ लगेगा तब ही तो कोई करिश्मा दिखाएगा।''

महिलाएं अपनी मर्ज़ी से चार-दीवारी के भीतर सिमट कर नहीं रही हैं। अभी हाल में हुए कुछ राज्यों के पंचायती चुनावों में महिलाओं में जो उत्साह व भागीदारी देखने में आई, उससे साफ़ ज़ाहिर है कि वे जीवन के हर क्षेत्र में हिस्सा लेना चाहती हैं।

एक झलक

राजस्थान में 41 हज़ार महिलाएं चुनाव जीत कर पंच तथा सरपंच बनी हैं। इनमें से कई ऐसी महिलाएं हैं जो पर्दे के बिना बाहर नहीं निकलती थीं। कुछ महिलाओं ने बीच का रास्ता अपनाया। गांव में तो पर्दा रखा पर बाहर जाकर घूंघट खोल दिया। चुनाव के दौरान उन्होंने भाषण भी दिए। अधिकतर गांवों में उत्सव जैसा माहौल रहा।

अभी तो ज्यादातर उन महिलाओं को अवसर मिल पा रहा है जो पंचों की बीवियां या बहुएं हैं, या जिनके रिश्तेदार राजनीति के और क्षेत्रों में सक्रिय हैं। राजनैतिक पार्टियों की भी बेहद घुसपैठ है। फिर भी कई महिलाएं अपने बलबूते पर चुनाव जीती हैं।

उत्तर प्रदेश में चुनाव-प्रक्रिया चल रही है। यहां भी महिलाएं बहुत उत्साहित हैं। गांव की महिलाओं का कहना है कि ''हमें आसानी से आगे बढ़ना नहीं मिलेगा। यह हम अच्छी तरह जानती हैं।'' कई जगह महिलाएं अपना चुनाव अभियान स्वयं चला रही हैं। अलीगढ़ ज़िले में कई जगह महिलाएं भरी जीपों में घूमती दिखीं, जहां पुरुषों के

नाम पर केवल वाहन-चालक थे। मतदाताओं में भी बेहद जोश व उत्साह देखा गया। तैयार फसल कटने का समय होते हुए भी 80 से 85 फीसदी मतदान हुआ।

जून '93 तक उत्तर प्रदेश में 74000 ग्राम सभाओं में केवल 930 महिला सरपंच थीं। अभी के चल रहे चुनावों का नतीजा आना बाकी है। जो भी हो एक-तिहाई महिला पंचों और सरपंचों के आने से बदलाव अवश्य ही आएगा। बहुत बड़ी संख्या में स्वतंत्र रूप से चुनाव जीतने में समय लग सकता है।

सत्ता से चिपके पुरुष

असली बात तो यह है कि सत्ताधारी आसानी से अपनी ताक़त व कुर्सी छोड़ना नहीं चाहते। यह बात राजनैतिक दल के नेताओं से लेकर परिवार के मुखियाओं तक, सभी के केस में पूरी तरह लागू होती है। यह दलील बहुत गलत है कि अनपढ़ महिलाएं पंच अथवा सरपंच का पद नहीं संभाल सकतीं। सूझबूझ व सबका हित देखने के लिए पढ़ा-लिखा होना जरूरी नहीं है। बहुत विरोधों के बावजूद महिलाओं ने ज़मीन, वन, जल, स्वास्थ्य व सफाई सुविधाओं के लिए अभियान चलाए हैं। यही नहीं, शराब-विरोधी आंदोलन भी चलाए हैं। अब पंचायत में उन्हें एक अधिकार का पद मिलेगा तो वे सफलतापूर्वक कई क्षेत्रों में काम कर सकती हैं।

महिलाओं को पंचायत समिति ठीक से चलाने के लिए प्रशिक्षण व प्राथमिक शिक्षा दी जानी कोई कठिन काम नहीं है। इसकी ज़रूरत से इंकार न करते हुए भी बिना संदेह यह कहा जा सकता है कि महिलाओं के पंचायत में आने से स्थानीय प्रशासन ज्यादा अच्छी तरह चलेगा। ज्यादा संतुलित ढंग से चलेगा। यह बात कई सर्वेक्षणों से भी निकलकर आई है कि महिला पूरे परिवार के हित का सोचती है, जब कि अक्सर पुरुष केवल अपने हितों को ध्यान में रखते हैं।

असल में तो प्रशासन का मानस बदलना बहुत ज़रूरी है। पंचायत राज की असफलता का कारण महिलाओं का अनपढ़ होना नहीं बल्कि स्वार्थी तत्वों की घुसपैठ होगा। राजनैतिक दलों के हस्तक्षेप से भी रुकावटें आने का अंदेशा है।

सुनहरा मौका खोएं नहीं

1993 में संविधान के 73 वें व 74 वें संशोधन को इतिहास में एक क्रांतिकारी कदम के रूप में देखा जाएगा। महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण देकर उन्हें आगे बढ़ने का एक अच्छा अवसर मिला है। इसका उपयोग वे कितना कर पाएंगी यह काफी हद तक उनकी समझ व सूझबूझ पर निर्भर करता है।

महिला पंचों तथा सभी महिलाओं को यह समझना है कि देश में स्वतंत्र लोकतंत्र बनाए रखने के लिए राजकाज में उनकी भागीदारी ज़रूरी है। कई दबावों व रुकावटों के बीच काम करते हुए स्वतंत्र फैसले लेने होंगे। आज उनके कंधों पर एक बड़ी ज़िम्मेदारी आई है। घूंघट की आड़ से यह कहने से काम नहीं चलेगा "वे जानें"। उसकी अपनी खुशहाली व पूरे गांव की खुशहाली का दारोमदार इसी पर है। □

अन्नपूर्णा: कहानी शालिनी ताई की

वीणा

कुछ दिन पहले एक शिविर में उससे मुलाकात हुई। करीब पच्चीस बरस की पढ़ी-लिखी लड़की। अच्छा कमाती है। खूब हिम्मती है। सामने अच्छा भविष्य है। बातचीत के दौरान बोली—''मैंने बहुत ग़रीबी के दिन देखे हैं।'' यकीन नहीं हुआ। उसकी आपबीती सुनी। उसमें से उभरी एक और हिम्मती औरत की कहानी। उसकी मां। आज मैं उसी से आपका परिचय कराना चाहती हूं। इसका नाम जानने से कोई फ़ायदा नहीं। चलो, सहूलियत के लिए उसे शालिनी ताई कहते हैं। हां, मराठी है वह। आज पैंसठ साल की बूढ़ी है, परंतु अब भी अपने पैरों पर खड़ी है। आत्मविश्वास से भरी, खुद्दार औरत।

शालिनी ताई निम्न मध्य वर्ग में पैदा हुई। ऐसे ही घर में ब्याही गई। दो वक्त की रोटी आराम से मिल जाती थी। सिवाए घर के काम और घर के लोगों की सेवा करने के उसने कुछ नहीं जाना था। उसके पति की एक छोटी सी दुकान थी। किताब कापी, पैंसिल आदि की। गृहस्थी की गाड़ी चल रही थी।

शालिनी ने बहुत ऊंचे सपने कभी देखे ही नहीं थे। बाहर की दुनिया का उसे कुछ भी पता नहीं था। उसका संसार तो चौके में था।

शांत घरौंदा टूटा

वह खुश थी। पति अच्छा था। तीन बच्चे थे। दो बेटियां और एक बेटा।

एकाएक उसकी दुनिया में तूफान आया। उसके पति की दुकान में बहुत घाटा हुआ। लोगों का उधार नहीं चुका पाया। दुकान बेचनी पड़ी। वह बेकार हो गया। नौकरी की तलाश शुरू की। महीनों पर महीने बीतने लगे। कोई नौकरी नहीं मिली। घर का सामान बिकने लगा। आखिर पेट तो भरना था अपना भी और बच्चों का भी।

नौबत यह आ गई कि बेचने को भी कुछ न रहा। अपनी गरीबी को छुपा कर रखना भी मुश्किल हो गया। सफेद पोशी और इज्ज़त ने भीख भी नहीं मांगने दी। भूखे बच्चों का रोना सुना न जाता था। इन हालात ने शालिनी के पति की हिम्मत बिल्कुल तोड़ दी। वह तो बिस्तर पर लेट गया।

जब लगने लगा कि चार छः दिन से ज्यादा

का दाल चावल नहीं बचा तो उसके पति ने कहा—"शालू, अब मैं पूरी तरह हार गया हूं। मैं तुम सबको नहीं पाल सकता। चलो हम सब जान दे देते हैं। पहले बच्चों को नदी में धक्का दे देंगे, फिर खुद कूद पड़ेंगे।"

शालिनी को भी हालात मालूम थे परंतु उसने कहा—"एक सप्ताह और देख लेते हैं। फिर भी कुछ न हुआ तो हम सब आत्महत्या कर लेंगे।"

उसी दिन शाम को उनकी दुकान पर काम करने वाला एक आदमी मिलने आया। बातचीत के दौरान बोला कि इस शहर में खाने-पीने की बड़ी तंगी है। अकेले रहने वालों को कहीं भी घर का खाना नहीं मिलता। रोज़-रोज़ होटल में खाना मुश्किल है। शालिनी बोली, "भैया,अब आए हो तो जो कुछ रूखा-सूखा है, खाकर जाओ।"

शालिनी ने आखिरी बर्तन बेच कर थोड़ा-सा आटा, दाल, चावल खरीदा और मेहमान को भोजन परोसा। घर जाने से पहले वह कहने लगा—"भाभी, अगर तुम्हें एतराज न हो तो मैं सुबह शाम यहां खाना खा लिया करूं और तुम पैसे ले लो।"

नई शुरुआत

बस यहां से शुरुआत हुई एक व्यवसाय की। पहले दो चार बंधे ग्राहक लगे, फिर बढ़ते गए। दुकानों, दफ्तरों, कारखानों में काम करने वाले लोग जिन्हें वाजबी दामों पर घर का साफ-सुथरा खाना मिलने लगा।

शालिनी ने तो हमेशा खाना पकाया ही था। अब वो इन सबको भी अपना परिवार समझने लगी। यह सब इतना आसान नहीं था और न ही उसके संघर्ष के दिन इतनी जल्दी खत्म हो गए। लेकिन अब निराशा नहीं थी।

अभी बच्चे छोटे थे। पति खाट पर पड़ा रहता था। शालिनी अकेली मंडी से राशन, सब्जी खरीदती। साफ़ करती। सुबह तीन बजे से उठ कर खाना पकाना शुरू करती। रात को बारह बजे भी कोई ग्राहक आ जाए तो भूखा वापिस न जाने देती। उठ कर दोबारा चूल्हा जलाती, रोटी सेंकती और खाना देती। उसने अपने कुछ उसूल बनाए थे कि पूरी ईमानदारी और मेहनत से काम करेगी। हर ग्राहक उसके परिवार का सदस्य था। जिसका दुख-सुख उसका अपना था। उसने कभी एक कटोरी खीर या मिठाई का एक टुकड़ा भी अपने बच्चों को अलग से नहीं दिया।

ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होने लगे उसे मदद करने लगे। लड़का उसके साथ राशन लेने जाता। सब मिल कर उसे छानते, बीनते। स्कूल जाने से पहले लड़कियां सौ-सौ रोटियां सेंक कर जातीं। वापिस लौट कर फिर खाना पकाने, बर्तन साफ़ करने में मां का हाथ बंटातीं। खूब मेहनत का जीवन था। पैसा भी बहुत ज्यादा नहीं था।

शालिनी कभी बेवाजिब मुनाफ़ा नहीं लेती थी। वह चाहती थी उसके परिवार को इज्ज़त और आत्मसम्मान के साथ पेट भर खाना मिलता रहे। बच्चे पढ़ते रहें। मां और बच्चे मिल कर साठ-साठ लोगों का दोनों समय का पूरा खाना बनाते। दाल, सब्जी, रोटी, चावल।

मेहनत रंग लाई

शालिनी की मेहनत और हिम्मत रंग लाई। बच्चे पढ़ लिख गए। उसने बड़ी बेटी का ब्याह कर दिया। फिर लड़का अच्छी नौकरी करने लगा। आज छोटी बेटी भी अच्छे पद पर है। पति आज

भी बिस्तर पर ही है। परन्तु शालिनी ने अकेले इस पूरे परिवार को डूबने से बचा लिया। सबसे बड़ी बात तो यह कि उसे यह पता ही नहीं कि उसने कोई बड़ा काम किया है।

आज जब उसके बच्चे कहते हैं कि मां तुम अब काम मत करो, उसका जवाब एक ही है—''अब काम ही मेरी ज़िंदगी है। मैंने हमेशा मेहनत का खाया है। अंत तक वही करना चाहती हूं।''

बेटी कहती है, ''मैं मां की भावना समझ सकती हूं, इसलिए उसे काम से रोकती नहीं। बस, अब ग्राहक कम कर दिए हैं। इतने ज्यादा लोगों का खाना अकेले बनाना अब उसके बस की बात नहीं। अब भी जब अपने रोज़ के ग्राहकों को थाली परोस कर देती है, तो गरम रोटी खिलाती है। अपने चकले बेलन, बर्तनों के बीच संतुष्ट अन्नपूर्णा लगती है। जिसके कारण ही आज हम सब ज़िंदा हैं।''

□

घरों से बेघर हुए लोग

समस्याएं औरतों की

मणिमाला

विस्थापन की समस्या दुनिया भर में है। हर जगह लोगों को उजाड़ कर लोगों का विकास किया जा रहा है। जाहिर है उजड़ने वाला एक वर्ग होता है। विकास दूसरे का होता है। अक्सर गरीब उजड़ते हैं। अमीर बसते हैं। इसी को विकास का नाम दिया गया है। जब कभी गरीबों को बसाने की बात होती है। उनके विकास की बात आती है। इसकी थोड़ी सी जिम्मेदारी अमीरों में बांटने की बात होती है तो उसे विकास नहीं माना जाता। पिछड़ापन माना जाता है।

यही वजह है कि दुनिया भर में लोग उजड़ रहे हैं। उजड़े हुओं को बसाने की बात भी नहीं की जाती। जो ऐसी बातें करता है उसे विकास का दुश्मन मान लिया जाता है। अब तो देश का दुश्मन भी कहा जाने लगा है। फिर भी उजड़ने वालों ने अपनी आवाज बुलंद की है। यह विकास है या विनाश, यह सवाल पूछा जा रहा है। यही सवाल पूछने के लिए 26, 27 और 28 मार्च को देश भर की विस्थापित महिलाएं बड़वानी के एक गांव में इकट्ठी हुईं। गांव का नाम है साततलाई। बड़वानी मध्य प्रदेश में है।

एक अनूठा सम्मेलन

करीब पांच सौ महिलाओं ने इसमें हिस्सा लिया। यह सम्मेलन अपने किस्म का अनूठा सम्मेलन रहा। अनूठा इसलिए कि ज़्यादातर महिलाएं गांवों की थीं। अनपढ़ थीं। या बहुत कम पढ़ी-लिखी थीं। फिर भी अपनी बात बड़ी सफाई

से कह रही थीं। दूसरों की बड़ी ध्यान से सुन रही थीं। चर्चा बहुत ही गंभीर हुई।

बहुत कम समय में इतनी गंभीर चर्चा मैंने पहली दफा सुनी। हालांकि देश के विभिन्न हिस्सों से बहनें आई थीं। अलग-अलग भाषा बोलने वाली। हमारे समाने भाषा कोई दीवार नहीं बनी। बड़े आराम से उन्होंने अपनी भाषा में अपनी बातें कहीं। फिर कार्यकर्ताओं ने उसका अनुवाद किया।

तीन दिनों की चर्चा से जो मुद्दे उभर कर आए उनमें सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा था विस्थापन के बावजूद औरतों की उपेक्षा। जब कभी कोई सरकार विस्थापित जनों के लिए कोई नीति बनाती है तो सिर्फ मर्दों को ध्यान में रखकर बनाती है। जबकि मर्दों के साथ सारी समस्याएं तो औरतें झेलती ही हैं। उनकी अपनी अलग समस्याएं भी होती हैं।

कड़वे अनुभव

कई औरतों ने बताया कि विस्थापन के बाद उनका सब कुछ बिखर गया। एक गांव कई टुकड़ों में बंटा। यहां तक कि एक घर भी कई भागों में बंटा। औरत का वक्त बाहर काम के बाद घर में ही बीतता है। घर टूटता है तो औरत टूटने लगती है। कुछ बनाने का सबसे ज़्यादा अहसास घर से ही जुड़ा होता है। घर उसे एक किस्म की सुरक्षा का अहसास कराता है। अपनत्व का बोध सबसे ज़्यादा घर से ही होता है।

एक घर टूटता है। नया घर बांधना पड़ता है। एक जगह उजड़ कर मर्द रोजी-रोटी की खोज में भटकते हैं। औरतों को तिनका-तिनका चुन कर घर बांधना पड़ता है। बाहर कमाना भी पड़ता है। बच्चे भी संभालने पड़ते हैं। सच्चाई तो यह है औरत एक बार उजड़ती है तो फिर बस ही नहीं पाती।

विकास या विनाश। यह सवाल पूछने के लिए सातलाई (म.प्र.) में घरों से बेघर लगभग पांच सौ औरतें इकट्ठी हुईं। यह एक अनूठा सम्मेलन रहा। अनूठा इसलिए कि ज्यादातर महिलाएं गांवों की थीं। अनपढ़ थीं। या बहुत कम पढ़ी-लिखी थीं। फिर भी अपनी बात बड़ी सफाई से कह रही थीं।

इन औरतों ने संकल्प लिया कि वे अपनी लड़ाई जारी रखेंगी। विकास के नाम पर विनाश नहीं होने देंगी।

नई जगह उनकी कोई जान-पहचान नहीं होती। अनजान जगह काम मांगने जाती हैं। ज़्यादा काम। कम दाम। यह तो आम बात है। कई दफा काम का उतना दाम भी नहीं मिलता। कई बार वे खो जाती हैं। बच्चों को पता नहीं कि मां कहां है। पति को पता नहीं होता पत्नी कहां है। मध्य प्रदेश के उजड़े हुए गांव की कई औरतें पति की मौत के बाद भी अपने को सुहागन समझती रहीं। इतना तक पता न चल सका कि उनका पति डामर ढोते हुए मारा गया।

समस्या बेटियों की

एक और बड़ी समस्या आती है बेटियों की शादी की। गांव उजड़ जाता है। परिवार बिखर जाता है। दूर-दूर तक अपना कोई नहीं होता। कौन रिश्ता दे। कौन रिश्ता ले। पढ़ाई-लिखाई का कोई इंतजाम नहीं। न ही औकात। ऐसे में जवान अविवाहित बेटियों का दुख। कितना अकेलापन। कितना बेगानापन। कितना खालीपन। न हाथ में कोई

काम। न दुख में कोई साथ। इन हालात में उनका शोषण बहुत होता है। कोई प्यार का झांसा देकर शोषण करता है। कोई जबरदस्ती करता है। कई औरतों ने बताया कि नर्मदा घाटी के कई गांवों की औरतें बाहर काम पर जाती हैं तो पेट लेकर लौटती हैं।

घाटी के ही एक गांव अंतरास की बुद्धि बहन ने आत्महत्या कर ली। उनका गांव चार बार डूबा। चार बार उन्होंने पानी उतरने के बाद फिर घर बांधा। अपना। औरों का भी। चार बार डूबे हुए गांव को बसाया। जाहिर है बांध समर्थक उनसे नाराज हो बैठे। हर बार गांव डूबता। हर बार वह बसा जो देती थी। आखिरकार उन्हें हटाने के लिए उन पर बलात्कार किया गया। तीन पुलिस वालों और एक पटेल ने। बुद्धि बहन ने 18 जनवरी को आत्महत्या कर ली। विस्थापन की इस पीड़ा से आगे और क्या होगा।

इतना सब कुछ बर्दाश्त करने के बाद भी औरतों का हौसला नहीं टूटा है। उन्होंने साततलाई में संकल्प लिया कि वे इस लड़ाई को जारी रखेंगी। विकास के नाम पर विनाश नहीं होने देंगी। वे लड़ेंगी विकास की इस धारा के खिलाफ। वे लड़ेंगी विस्थापन के खिलाफ। सबने बुद्धि बहन के साहस की कसम खाई कि वे लड़ेंगी।

□

महिलाओं की जागरूकता व एकजुटता रंग लाई

गढ़वाल के पहाड़ी इलाके में जोशीमठ से 7 कि.मी. दूर एक गांव है पैनी। यहां लगभग 2-3 साल से एक महिला मंगल दल सक्रिय है। पिछले साल यहां एक घटना घटी जिसने इनके जीवन को तो एक नया मोड़ दिया ही, पूरे गांव की माली हालत भी सुधर गई। हुआ यह कि इनको किसी तरह यह पता चल गया कि गांव का सरपंच गांव की 0.2 हेक्टर सार्वजनिक ज़मीन को बेचकर पैसा खाना चाहता है। उस ज़मीन पर पौधों की नर्सरी थी। मज़बूत इरादों वाली 30 महिलाओं ने उसका भांडा फोड़ा और अधिकारियों से मिलकर उस ज़मीन को फिर से गांववालो के कब्ज़े में लिया।

वे अब वहां फल-सब्जी उगाती हैं। खुद उसे आस-पास बेचती हैं। अतिरिक्त सब्जी व फलों के अचार व मुरब्बे आदि बनाकर बेचती हैं। अचार व मुरब्बे बनाने और बिक्री करने का प्रोत्साहन उन्हें एक गैर-सरकारी संगठन से मिला।

आज उन्होंने अपने संयुक्त कोष में एक महत्वपूर्ण राशि जमा कर ली है। जिन महीनों में आमदनी कम होती है या वक्त ज़रूरत पर उन्हें इस कोष से बहुत सहारा व मदद मिलती है।

सुनोगी मेरी कहानी

जुही

मेरा नाम चंपा है। बंगाल के सबसे गरीब और पिछड़े इलाके के एक छोटे से गांव मेघापुर में मेरा जन्म हुआ। मेरा परिवार बहुत ही गरीब है। पिता दूर-दूर के इलाकों में मजूरी करने जाते। जो भी कमाते उससे घर का खर्चा होता। फिर भी मुझे कोई ऐसा दिन याद नहीं है जब मैंने भरपेट चावल खाया हो। घर में मेरे अलावा मेरे छः छोटे भाई-बहन भी थे।

मेरा बचपन

मुझे अभी भी याद है। कई बार जब घर में खाना नहीं होता था तो मैं अपने छोटे भाई-बहनों के साथ तीस कोस दूर देवी मंदिर जाती। वहां पर भीख मांगते। कई बार मंदिर का पुजारी हम पर दया करके थोड़ा कुछ खाने को देता था।

रोज शाम को मेरे पिताजी पास के तालाब से मछली पकड़ने जाते। रात को मछली जल्दी फंसती हैं। दो-तीन बड़ी मछली मिल जातीं तो उन्हें बेच कर बदले में कुछ और चावल खरीद लेते। एक-दो छोटी मछली मैं छुपा लेती। भूनकर खाने के लिए। मुझे बहुत अच्छी लगती है न।

मेरी मां हमारे साथ नहीं रहती थी। कभी-कभी आती थी मिलने। शहर में फैक्टरी में काम करती थी। याद है मां बहुत सुंदर थी। अच्छे कपड़े पहनती। खुशबू लगाती। फूल लगाती। जब भी घर आती, हम सबके लिए कपड़े-मिठाई लाती। हम मां को देखकर बहुत खुश होते। पर न जाने क्यों पिताजी जब भी मां को देखते उनकी आंखों से आंसू बहते। दोनों कुछ बात करते। फिर मुझे सीने से लगाकर मां खूब रोती।

मैं काम करना चाहती थी

मैं तेरह साल की हो गई। पास-पड़ौस के बच्चे शहर में काम करने जाते। मैं भी काम करना चाहती थी। पिताजी से कहा कि मैं भी और बच्चों की तरह शहर जाऊंगी। फिर घर पैसे भेजूंगी। फिर हम आराम से रहेंगे। पर मां-पिताजी दोनों नहीं मानते। पर मैं बहुत जिद्दी थी। एक दिन मां मुझे अपने साथ शहर ले गई। शहर में मैंने देखा, मां जिस जगह रहती है वहां मेरी तरह और भी लड़कियां थीं। तेरह-चौदह साल की। सुबह शाम कुछ आदमी आते और दो-चार बच्चियां उनके साथ चली जातीं। एक-दो दिन बाद वापस आतीं।

दूसरे दिन एक आदमी हमारे घर आया। मैं और मां चुपचाप उसके साथ चले गये। वह हमें एक दफ्तर में ले गया। दफ्तर के मालिक ने कहा कि वह मुझे काम दिलाएगा। मुझे एक घर में बर्तन-सफाई करनी है। 20 रुपये मिलेंगे। खाना-कपड़ा भी। मेरी मां राजी हो गई। पर मैं मां की तरह फैक्टरी में काम करना चाहती थी। पर मां

नहीं मानती थी। कहती थी उसके लिए मैं बहुत छोटी हूं।

काम का बोझ

मैंने काम करना शुरू कर दिया। मेरे नए मालिक अच्छे थे। मुझे खाने को भरपेट मिलता था। चावल भी और मछली भी। पर मुझे काम बहुत करना पड़ता था। सुबह छः बजे से रात को देर तक। मुझे घर की बहुत याद आती। और मैं रात को रोती रहती। सोचती, अगर हम गरीब नहीं होते तो कितना अच्छा होता।

मैं अभी भी फैक्टरी में काम करना चाहती थी। मां की तरह बहुत पैसा कमाना चाहती थी। इसलिए मैं अपना काम छोड़ने का बहाना ढूंढती रहती थी। मालिक के घर में एक नौकर था नन्दू। नन्दू की एक बहन थी रोज़ी जो एक बड़ी फैक्टरी के होटल में काम करती थी। वह भी मां की तरह अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती। जेवर पहनती।

नन्दू ने मुझे अपनी बहन से मिलवाया। रोज़ी ने कहा, अगर मैं उसकी बात मानूंगी तो वह मुझे अपने होटल में काम दिलाएगी। वहां खूब पैसा मिलेगा। मेरे परिवार की गरीबी दूर हो जायेगी।

सपना टूट गया

मुझे होटल में काम मिल गया। मुझे खूब पैसे मिलते। मैं घर पैसे भेजती। मेरे भाई बहन पढ़ने लगे। एक महीने सब ठीक रहा। फिर एक दिन रोज़ी ने एक कमरे में मुझे नाश्ता देने भेजा। कमरे में एक आदमी ने मुझे धर-दबोचा। मैं चीखी-चिल्लाई पर वह नहीं माना। उसने मेरे साथ बलात्कार किया।

अब मुझे पहले से भी ज्यादा पैसे मिलते। न जाने कितने आदमियों ने मेरे साथ बलात्कार किया। मैं भागना चाहती थी। पर होटल के गार्ड मुझे बाहर नहीं निकलने देते थे। मुझे छूत की बीमारी हो गई थी। धीरे-धीरे मालूम हुआ फैक्टरी की आड़ में यही होता है। गरीब लड़कियों की मजबूरी का फायदा उठाया जाता है। मेरे साथ काम करने वाली लड़कियां भी दुखी थीं। हम सब यहां से भागना चाहते थे।

एक दिन हम चार लड़कियां रात के सन्नाटे में खिड़की खोलकर भाग निकले। पुलिस थाने पहुंचे। दूसरे दिन पुलिस ने होटल में छापा मारा। पर तब तक रातों-रात वह लोग वहां से भाग गये थे। मैं वापस घर आ गई। अपना इलाज कराया।

अब मैं काम करती हूं। घर में नौकरानी का। पैसे कम हैं। पर अब ज्यादा खुश हूं। अब समझ पाई हूं मेरी मां मुझे फैक्टरी में काम क्यों नहीं करने देती थी। वह किस मजबूरी से हमें पाल रही थी।

कांटों से दामन बचाएं

मेरी आपबीती सुनकर आपको क्या लगा? क्या आप दुखी हुए, शर्मिन्दा हुए या नाराज। जो भी हो मैं अपनी जिंदगी के जरिए, अपनी तकलीफ़ आपके साथ बांट रही हूं। मेरी जिंदगी से सबक लेकर बहुत सी लड़कियों का जीवन बर्बाद होने से बच जाएगा, यह मेरी उम्मीद है।

"बहनों, मैं चाहती हूं आप जानें मैंने क्या भोगा है। इससे सबक लेकर आप समय से पहले न मुरझाएं। यह जानने से पहले कि जीवन में फूल ही फूल नहीं हैं आप कांटों से दामन बचाना सीख लें।"

—एक सच्ची घटना
पर आधारित

कोई ठग न सके

सुखिया झोंपड़ी के दरवाजे पर बैठी रस्सी बट रही थी। इतने में लल्ली वहां आ गई। "प्रणाम काकी" लल्ली ने सुखिया को प्रणाम किया। सुखी रहो, सुहागिन रहो। सुखिया ने आशीर्वाद दिया। "काकी, तुम मंजु दीदी को जानती हो?"

"कौन मंजु, वही महिला समाख्या वाली?"

"हां काकी वही। उसके घर चलना है। पर तुम भी साथ चलो तब।" फिर लल्ली ने पूरी बात बताई। उसके पति ने पंजाब से मनीआर्डर भेजा था। वह वहां फैक्टरी में काम करता था। लल्ली से पोस्टमैन ने कहा 20 रुपए खर्च करो तो मनीआर्डर मिलेगा। तुम्हारा पैसा आया है। हमारा मिठाई खाने का हक है। पिछली बार यही कहकर उसने दस रुपए लिए थे। बच्चा भी बीमार है। उसकी दवाई लानी है। डाक्टर बाबू उसे दूध पिलाने को कहते हैं। यह बीस रुपए की घूस डाक पिउन को क्यों दें? मगर क्या करे, इस बार भी देना पड़ा।

काकी ने रस्सी बटना बंद कर दिया। उन्हें याद आई, घूस तो उनको भी देना पड़ा था। जब भी मनीआर्डर आता डाकिया बीस, पच्चीस लेता है। सुखिया काकी का बेटा कलकत्ते में नौकरी करता है।

हम लोगों को कुछ करना चाहिए। गांव में बहुत घरों के मर्द बाहर काम करने गए हुए हैं। बहुत स्त्रियों के मनीआर्डर आते हैं। सबको घूस देना होता होगा। इन दोनों स्त्रियों ने महिला समूह की बैठक में यह बात उठाई। कई और महिलाओं ने भी यह शिकायत की।

दूसरे दिन सखी रामकली देवी के नेतृत्व में महिलाएं पोस्टमैन के पास गईं। उसे घेर कर खड़ी हो गईं। उन्होंने कहा तुम जो पैसा लेते हो वह घूस है। गैर-कानूनी है। कोई रुपया, दो रुपया खुशी से दे वह और बात है। पोस्टमैन ने आंखें दिखाईं। मुकर गया कि उसने कोई पैसा लिया था। स्त्रियां हारी नहीं।

बूढ़ी विधवा सतो देवी सामने आईं। और तो और दस रुपया हमसे भी लिया था। भूल गए डाक बाबू? औरतों ने पोस्टमैन को धिक्कारा। हम सब झूठ बोलते हैं क्या? जब वह नहीं माना तो सखी ने धमकी दी। हम सब ब्लाक ऑफिस जाएंगे। बी.डी.ओ. साहब से शिकायत हो जाएगी। वह भी लिखित।

''अरे हम कलेक्टर के पास जा सकते हैं।'' सुखिया काकी ने कहा। अंत में पोस्टमैन को स्वीकार करना पड़ा कि उसने सबसे पैसे ऐंठ कर ही उनके मनीआर्डर उनको दिए थे। लिए गए पैसे बारी-बारी से लौटाने की बात की। उस समय उसके पास पैसे नहीं थे।

''बूढ़ी विधवा सतो देवी के दस रुपए सबसे पहले वापस करना,'' सभी स्त्रियों ने एक स्वर से कहा।

इसके बाद फिर पोस्टमैन ने कभी घूस नहीं लिया। मनीआर्डर लाता है तो वे अपनी खुशी से उसे कुछ देती हैं। कभी थोड़ा गुड़। कभी एक बतासा या एक प्याला चाय। सुखिया काकी ने बेटे की शादी की तो पोस्टमैन को मिठाई खिलाई। काकी बहू-बेटियों से बोली मैं तो बूढ़ी हुई पर तुम लोग तो पढ़ना सीखो कि कोई तुम्हें ठग न सके।

चर्चा के लिए कुछ प्रश्न:

1. घूस लेना और देना अपराध क्यों है?
2. अन्याय के खिलाफ़ किस प्रकार लड़ें?
3. महिलाओं को पोस्टमैन का सामना करने की हिम्मत कैसे और कहां से मिली? ☐

साभार: **बिहार महिला समाख्या**

पिटारा क़ानून का

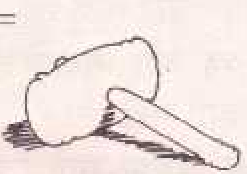

आभा जोशी

कानून? हां, हां वही... कोर्ट-कचहरी, पुलिस... हमारा कानून से क्या वास्ता है? कुछ भी नहीं—कानून तो लड़ाई-झगड़े, मार-पीट की स्थिति में लागू होता है। कानून क्या है? कानून तोड़ने से जेल हो जाती है। सरकार क्या है? गांव के, समाज के बड़े लोग सरकार हैं। ये हैं कुछ आम प्रतिक्रियाएं कानून के प्रतिः शहर हो या गांव। ये और कई कानून की बातें उठती हैं कानूनी साक्षरता शिविरों में जो कुछ सालों से महिला संस्थाओं के कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई हैं।

कानूनी साक्षरता की ज़रूरत क्यों महसूस हुई? क्या करेंगी ये ''गरीब और अनपढ़'' महिलाएं कानून जान कर? क्या ये अपने अधिकारों के लिए कचहरी तक लड़ने जाएंगी? ये सवाल कानूनी साक्षरता करने वालों के मन में स्वयं भी उठते हैं और अक्सर हमसे पूछे भी जाते हैं। जिन महिलाओं को पढ़ना तक नहीं आता, आप उन्हें कानून सिखाती हैं? कभी आश्चर्य, अधिकांश बार कुछ मुस्कुराहट और ''रहने भी दो'' वाले भाव से यह सवाल हमें पूछा जाता है। इसके जवाब में हमारे पास तर्क से ज्यादा, बहुत सारे सुंदर अनुभव हैं। उन कथित ''गरीब और अनपढ़'' महिलाओं की तीव्र बुद्धि और समझदारी के, उनके साहस के, उनके हास्य और व्यंग करने की कुशलता के!!

कानून क्यों सीखा जाए?

कानूनी साक्षरता के विषय में सबसे पहले यह सवाल उठता है कानून सीखने की ज़रूरत ही क्या है? क्या कानून सिखा कर हम महिलाओं को कोर्ट-कचहरी का रास्ता दिखाना चाहते हैं? नहीं। इसका एक उद्देश्य ही है कि कानून शब्द का नाता टकराव की स्थिति से न जोड़ कर, सामाजिक समन्वय और सुव्यवस्था के साधन के रूप में बताया जाए।

विषय कानून है, वकालत नहीं! यानि, हम अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को ठीक से समझ पाएं और उनके अनुसार, व्यवस्थित और न्यायपूर्वक जीवन बिताने की कोशिश करें। कानून के उपयोग से हम समस्याओं का हल ढूंढें और अपना बचाव करें।

अगला सवाल इससे भी महत्वपूर्ण है—कानून कैसे सिखाया जाए? कानून के पोथों से, जो पढ़ने तो दूर, उठाने ही कठिन हैं? या उन काली-सफेद पोशाक वालों के भाषण सुनें जो बड़े-बड़े शब्दों से और अनगिनत नंबर गिना कर (धारा यह और धारा वह) चले जाते हैं?

फिर, क्या किया जाए? आज की तारीख में, कानूनी साक्षरता के लिये कई सरल किताबें हैं जिनके जरिए कार्यकर्ताओं को मूल कानूनों के बारे में बता सकते हैं। 'मार्ग' संस्था ने कई कानूनों को

लेकर कानूनी साक्षरता की दस किताबें बनाई हैं जो पढ़ने व पढ़ाने में सरल हैं और रोचक भी। इन्हें कम पढ़ी हुई कार्यकर्ताएं भी पढ़ व समझ सकती हैं। इसके अलावा आप पोस्टर, फिल्मों आदि के आधार पर चर्चा करके, कानून के मूल तत्व समझा सकते हैं।

हर इलाके, समाज व संस्था की कुछ विशेष परिस्थितियां और समस्याएं होती हैं। कानूनी साक्षरता को इन पर विशेष ध्यान देना चाहिए, तभी 'कानून' को लोग अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी से जोड़ पाएंगे।

सबसे ज़रूरी हैं—सरलता और रोचकता बनाए रखना। यह तभी होगा जब आप समूह के स्तर को और समस्याओं को बराबर ध्यान में रखें। हमारा एक अनुभव रहा तिहाड़ जेल की महिला कैदियों के साथ। हम वहां गए थे कानूनी जानकारी देने। हमने महिला कैदियों की समस्याएं सुनीं—फिर उनमें से कानूनी मुद्दे निकालने शुरू किए। हर समस्या या केस से जुड़े हुए कानून के बारे में बताया। समूह की रुचि बनी रही।

एक बात और भी है। कानून बताने के साथ-साथ आप समूह को समस्याएं सुलझाने के व्यावहारिक तरीके भी बताएं। यानि, अगर चर्चा बलात्कार पर है, तो बलात्कार के कानून के साथ-साथ यह भी बताएं कि बलात्कार का सबूत क्या-क्या हो सकता है। पुलिस रिपोर्ट सही ढंग से कैसे करवानी चाहिए। डाक्टरी जांच कैसे करवानी चाहिए। कचहरी में औरत की ओर से कौन-कौन सी अर्जियां दी जा सकती हैं, आदि।

श्रमिक कानूनों के बारे में बताते समय यह भी बताना चाहिए कि श्रम अधिकारी का कार्यालय आपके शहर में कहां स्थित है, या न्यूनतम मज़दूरी की सूची उन्हें कहां से मिल सकती है, इत्यादि।

रायपुर की एक 65 वर्षीय विधवा की कहानी हमें बहुत प्रिय है। 'दाई' ने लगभग 60 साल की उम्र में साक्षरता प्राप्त की। साक्षरता से वह केवल अपना नाम या 'आ' 'आम' ही नहीं सीखीं—उन्होंने कविता करनी शुरू की। हमने जब रायपुर की 'रूपांतर' संस्था में कानूनी शिविर किया, तो 'दाई' ने बहुत रुचि से तीन दिन कानून सीखा और उस पर एक-आध कविता भी लिख डाली। उनके उत्साह को देख कर हम लोगों को बहुत तसल्ली मिली।

कुछ महीनों बाद जो समाचार हमें रायपुर से मिला, उसका प्रभाव हम पर क्या हुआ होगा, आप खुद अंदाजा लगाएं: दाई अपने बेटों और परिवार के साथ रहती हैं। बेटों ने उनके साथ लापरवाही बरतनी शुरू की। जब बात दाई की सहनशीलता के बाहर हो गई, तो उन्होंने बेटों से कहा—अब हमारा साथ गुज़ारा नहीं होगा, लाओ मुझे अपने पिता की संपत्ति का मेरा हिस्सा दो, मैं अपना गुज़ारा खुद कर लूंगी।

बेटों ने पलट कर कहा—संपत्ति में हिस्सा? तुम्हारा? कौन कहता है कि तुम्हारा संपत्ति में हिस्सा है? दाई ने झट अपनी प्रिय ''पीली किताब'' निकाली और कहा, यह किताब कहती है। बेटों ने फिर भी उनकी बात न मानी तो दाई उन्हें तहसीलदार के पास ले गईं।

तहसीलदार ने दाई की बात को ठीक ठहराया। तब से बेटे सही रास्ते पर चल रहे हैं और परिवार साथ में खुशी से रह रहा है।

कौन से कानून सिखाएं?

महिलाओं का कोई भी समूह हो, कुछ मूल समस्याएं ऐसी हैं जो सभी जगह हैं। चाहे वह उत्तर प्रदेश का बांदा जिला हो, या राजस्थान में बीकानेर, या फिर हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में बसे छोटे-छोटे कस्बे।

इन समस्याओं में से कुछ हैं—शादी और परिवार से जुड़ी हुई बातें। कई कार्यशालाओं के दौरान हमने पाया कि कई बहनें शादी, संपत्ति इत्यादि के कानून की छोटी-छोटी पर महत्वपूर्ण बातों से भी परिचित नहीं हैं। शादी कैसे रचाई जानी चाहिए, शादी किससे कर सकते हैं और किस उम्र में, तलाक के आधार क्या-क्या हैं? यह सारी जानकारी पाने से भले ही उनकी स्थिति में तुरंत सुधार तो नहीं आ जाता, उनका आत्मबल ज़रूर बढ़ता है।

कई महिलाओं को विशेष रूप से इस जानकारी से बहुत फ़ायदा हुआ कि पति मनमानी से उनसे 'तलाक' या 'छोड़ छुट्टी' नहीं कर सकता। यह जानकर भी औरतों को हैरानी व खुशी हुई कि संतान न होने पर भी पति दूसरी शादी नहीं कर सकता। इसी तरह पुलिस से संबंधित अधिकारों की जानकारी से महिला संगठनों का आत्मबल खूब बढ़ा और उनमें ग़लत बर्ताव से जूझने की क्षमता बढ़ी।

कानून का पिटारा तो जादूगर के पिटारे की तरह है। इसमें से अनगिनत कानून निकल सकते हैं। एक सावधानीः कानून जानना ही समस्या का हल नहीं। जानकारी हासिल करना, हल ढूंढने का एक महत्वपूर्ण साधन है। तो, खोला जाए यह पिटारा?

□

समानता के लिए ईसाई औरतों का संघर्ष

वीणा शिवपुरी

अन्य संप्रदायों की तरह ईसाई औरतों के जीवन पर भी धर्म का कड़ा नियंत्रण रहा है। ख़ासतौर पर शादी, तलाक या उत्तराधिकार जैसे मामलों में उनके साथ बहुत नाइंसाफ़ी होती आई है। व्यक्तिगत कानून के तहत उन्हें अपने ही धर्म के कानून को मानना पड़ता है। वे भारतीय होते हुए भी भिन्न कानूनों से बंधी हुई हैं।

असमानता और भेदभावपूर्ण कानूनों के खिलाफ़ ईसाई औरतों का संघर्ष बहुत पुराना है। ये कानून सैकड़ों साल पुराने हैं। आज के समय में उनकी उपयोगिता खत्म हो चुकी है। ज्यादातर धार्मिक कानून औरत को मर्द से गिरा हुआ दर्जा देते हैं। उसके साथ अन्याय करते हैं।

बेटियों को संपत्ति में बराबर हिस्सा

कुछ हिम्मती औरतों ने इसके ख़िलाफ़ सिर्फ़ आवाज़ ही नहीं उठाई, वर्षों लंबा व कठिन संघर्ष भी किया। एक स्कूल अध्यापिका मेरी रॉय ने सुप्रीम कोर्ट तक कानूनी लड़ाई लड़ी। सन 1986 में ट्रावनकोर ईसाई उत्तराधिकार कानून को देश के सर्वोच्च न्यायालय ने निरस्त कर दिया। इस कानून के तहत बेटियों को पिता की संपत्ति का सिर्फ़ एक चौथाई भाग या पांच हज़ार रुपये जो, भी कम हो वही मिलता था। अब देश के सभी ईसाइयों पर भारतीय उत्तराधिकार कानून लागू होगा।

तलाक कानून बदला

इसी तरह मेरी सोनिया ज़कारिया और इ. जे. अम्मीनी ने भारतीय तलाक कानून के खंड दस को चुनौती दी। इसके तहत ईसाई औरत को तलाक पाने के लिए यह साबित करना पड़ता था कि उसका पति गैर-कानूनी रिश्तों में यौन संबंध रखता है। या अन्य औरत के साथ यौन संबंध रखने के साथ वह पत्नी पर अत्याचार करता है या उसे छोड़ गया है। जबकि पति इनमें से कोई एक आरोप साबित कर के पत्नी से तलाक पा सकता था। इस कानूनी संघर्ष के परिणामस्वरूप केरल उच्च न्यायालय ने इस डेढ़ सौ साल पुराने पक्षपाती कानून को निरस्त घोषित कर दिया।

ईसाई धर्म की कानूनी सत्ता चर्च के हाथ में रही है। चर्च ने हमेशा तलाक का विरोध किया है। इसके कारण हज़ारों औरतों को मजबूरन बहुत दुखदाई शादियों को निबाहना पड़ा है। अनेक दुख उठाते हुए भी उन्हें शादी के बंधन से छुटकारा नहीं मिलता था।

एक और उदाहरण

इसका बहुत दुखद उदाहरण केरल की एक ईसाई लड़की का है। वह पश्चिम बंगाल में अपने सात साल के बेटे के साथ बेसहारा जीवन जी रही है। उसका पति खाड़ी प्रदेश में नौकरी करता था। वह तीन महीने के लिए भारत छुट्टी पर आया। यहां उसने इस लड़की से शादी की। तीन महीने साथ रहा, फिर खाड़ी देश को लौट गया। फिर न उसका पति लौटा और न गुज़ारा भत्ता दिया। इसके गले में शादी और एक बच्चे का फंदा डाल कर खुद गायब हो गया। चर्च ने उसे सलाह दी कि इंतजार करे और भगवान से उसके लौटने की प्रार्थना करे। प्रार्थना से पेट तो नहीं भरता। अब मेरी सोनिया ज़कारिया और अम्मीनी जैसी औरतों की हिम्मत का फ़ायदा ऐसी हज़ारों बेसहारा औरतों को मिल सकता है। वे भगौड़े पतियों से तलाक पाकर नया जीवन शुरू कर सकती हैं।

असली जीत

देश के अनेक न्यायालयों में ईसाई औरतों ने अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाई। वर्षों तक संघर्ष किया और अंत में जीत पाई। लेकिन असली जीत तब होगी जब इन अलग-अलग मामलों पर आधारित एक संपूर्ण बिल संसद में पास होकर सारे देश के लिए कानून का रूप ले लेगा।

महिलाओं की एक संस्था ने यह बिल तैयार किया है। इसमें पति यदि बिना वसीयत के मर जाए तो उसकी पूरी सम्पति पर पत्नी का अधिकार माना जाएगा। बच्चों का हक़ भी मां की मृत्यु के बाद होगा। इस प्रकार से इस बिल के तहत आज तक ईसाई औरतों के साथ होने वाले कानूनी भेदभाव को मिटाने की कोशिश की गई है। मेरी रॉय और उनके जैसी अनेक साहसी औरतों की मेहनत का फल है कि यह मुद्दा सामने आ सका। अनेक गैर-सरकारी संस्थाओं ने इसे समय-समय पर उठाया। अब सरकार और देश के न्यायालयों ने इसे माना है। अब आखिरी क़दम का इंतज़ार है जब यह बिल कानून की शक्ल ले लेगा। □

खिलखिलाएगी मेरी बिटिया

टिमटिमाती
चिमनी की रोशनी में
अपनी परछाई से
लड़ रही है बिटिया
अनजाने में
अपने अस्तित्व से
संघर्ष कर रही है बिटिया
उसे नहीं मालूम
यह खेल उसकी
ज़िंदगी बनेगा
देखेंगी आंखें
किसी मंजिल को
तो घूंघट
दीवार बनेगा
बढ़ेंगे कदम
किसी राह को
तो पाज़ेब
बेड़ियां बनेंगी
उठेंगे हाथ
किसी संघर्ष को
तो कंगन
हथकड़ियां बनेगा
उस मंद रोशनी में
उसके चेहरे पर है
कितना तेज
विश्वास है
उसे जैसे
भविष्य की
रोशनियों पर

जब होगी
बिजली की रोशनी
घर में चारों ओर
देखेगी तब
अपने आपको
पहचानेगी
खुद को मेरी बिटिया

गुम होंगी, सारी
दीवारें, बेड़ियों
और हथकड़ियों की
परछाइयां
मुस्कराएगी, हंसेगी,
खिलखिलाएगी मेरी बिटिया।

—श्रीकांत वर्मा

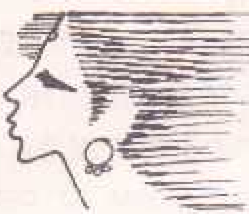

हारिए न हिम्मत बिसारिए न राम

जुही

बुनकर चमेली

लालीपुर एक छोटा सा गांव था। गांव के लोग कपड़ा बुनने का काम करते थे। सेठों से सूत लाते। बुनकर कपड़ा लौटा देते। कपड़े के बदले सेठ उन्हें मजदूरी के पैसे दे देते। पर पैसे बहुत कम होते थे। इतने कम पैसों में घर का खर्चा चलाना मुश्किल था। पर लोग करते भी तो क्या?

चमेली का परिवार भी इसी काम में लगा था। पति कपड़ा बुनता। चमेली और उसकी बेटी मदद करते। जैसे-तैसे आधे पेट चलाकर जिंदगी गुजार रहे थे।

अचानक एक दिन चमेली का पति बीमार पड़ गया। उसे सांस लेने में तकलीफ हो रही थी। वैद्यजी आए। मुआयना किया। पति काफी कमज़ोर हो गया था। सांस फूला था। वैद्यजी ने बताया ,, इसको सांस की बीमारी हो गई है। दमा कहते हैं। कपड़ा बुनते समय मुंह ढककर रखा जाना चाहिए। सूत के रोएं सांस के साथ अंदर जाते हैं। मैं दवा दे रहा हूं। पर ठीक होने में दो-तीन महीने लग जाएंगे। ज्यादा कमजोरी हो गई तो टी.बी. होने का डर है।

चमेली सन्नाटे में आ गई। सोचने लगी, अब क्या होगा? ये काम नहीं करेंगे तो हम खाएंगे क्या? दवा-इलाज का खर्चा कहां से आएगा।

फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। अपनी सहेली रजिया के पास गई। सब हालात बताए। रजिया ने कहा, "तुम कपड़ा क्यों नहीं बुनतीं?"

"मुझे तो बुनना आता ही नहीं।"

रजिया ने बताया, "यहां से दो मील की दूरी पर गांव की सरहद के पास, महिला सहकारी समिति है। समिति यही काम करवाती है। उसकी सदस्या बन जाओ। वहां तुम बुनाई सीख लोगी। फिर वहीं से सूत लेना। कपड़ा बुनकर उनको ही देना। अच्छा मेहनताना मिलेगा। मैंने भी वहीं काम सीखा और अपने पैरों पर खड़ी हुई।"

चमेली अपनी बेटी को साथ लेकर सहकारी समिति गई। वहां दोनों ने बुनाई सीखी। फिर वहीं से सूत लेकर काम शुरू किया। मेहनत से घर चल निकला। पति की दवा-दारू हुई। परिवार की आमदनी बढ़ी। और चमेली के हौसले को देख गांव की दूसरी औरतों ने भी समिति में काम सीखने का इरादा किया।

धोकिया ने सब्जी की दुकान लगाई

धोकिया अपने पति और दो बच्चों के साथ हंसी-खुशी रहती थी। खेती का काम था। एक दिन सांप के काटने से पति गुजर गया। धोकिया पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा। क्या करे? कहां

जाए? बच्चों को क्या खिलाए? इसी तरह दो महीने बीत गए। घर में जो रहा सहा था खत्म हो गया।

एक दिन उसे खबर मिली। गांव में महिला जागृति शिविर लग रहा है। उसमें औरतों के रोजगार के बारे में बात होगी। धोकिया भी शिविर में गई। वहां पता चला कि सरकार छोटे-छोटे काम-धंधे के लिए बिना ब्याज रुपए उधार देती है। यह उधार दस रुपए हर हफ्ते के रूप में वापस लिया जाता है।

धोकिया होशियार थी। गांव की कार्यकर्ता की मदद से अपने 'ग्राम्य योजना' से 500 रुपए उधार लिए। इस पैसे से सब्जी की एक दुकान लगाई। तराजू-बाट खरीदे। दुकान चल निकली।

उसके बच्चे स्कूल जाने लगे। लौटकर मां का हाथ बंटाते। धोकिया ने धीरे-धीरे कर्जा वापस कर दिया। आज उसका परिवार खुशहाल है।

केसर ने यूनियन बनाई

केसर के घर आज औरतों की बैठक है। ये औरतें रोजगार के लिए बीड़ी बनाती हैं। सारा दिन बीड़ी बनाने से भी बहुत कम पैसे मिलते हैं। सेहत भी खराब रहती है। इसलिए औरतों ने मिलकर एक रणनीति तैयार करने का इरादा किया है।

केसर ने कहना शुरू किया। "सारे दिन के काम के दस-बारह रुपए मिलते हैं। कई दिनों से सांस लेने में तकलीफ भी हो रही है। पर डाक्टर के पास जाने का मतलब है सौ रुपए ठंडे। मास्टर जी बता रहे थे आठ घंटे काम की मजदूरी कम से कम 33 रुपए है।"

सत्तो बोली, "ठेकेदार को मजदूरी बढ़ाने को कहो तो वह नौकरी से निकालने की धमकी देता है।"

केसर बोली, "ऐसा तब होगा जब हम अकेले ठेकेदार के पास जाएंगी। एका करें, फिर चलें तो हमें नहीं निकाल पाएगा।"

दूसरे दिन सब एक साथ ठेकेदार के पास गईं। उसने सबको साथ देखा तो डर गया। औरतों ने कहा, "हमें कुटी-कुटाई तंबाकू मिलनी चाहिए। कूटने से गर्द हमारे फेफड़ों में भर जाती है। बीड़ी बनाते समय मुंह पर बांधने को साफ पतला कपड़ा देना होगा। आठ घंटे काम के लिए कम से कम तैंतीस रुपए देने होंगे।"

ठेकेदार ने सब औरतों को एक साथ अपनी मांग रखते देखा तो वह समझ गया। इनकी मांग मानने में ही भलाई है। यूनियन को तोड़ना आसान नहीं है। □

चमेली, धोकिया और केसर, इन तीनों बहनों ने अपनी हिम्मत और लगन से एक मिसाल कायम की। साथ ही अपने जीवन को मायूसी से जीने की जगह, अपनी स्थिति को हीन समझ समझौता करने के बजाय, अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश की। एक दूसरे की मदद की, संगठित होकर अन्यायी का सामना किया। सीधी-सादी अनपढ़ औरतों ने यह साबित कर दिया कि अगर औरत एक बार कुछ ठान ले तो उसे कोई डिगा नहीं सकता।

इनसे प्रेरणा लेकर अगर हम सभी हिम्मत न हारकर, दुख, परेशानी का सामना लगन और निष्ठा से करेंगी तो कुछ भी असंभव नहीं है। इन औरतों ने कहीं न कहीं से सहारा पाया। इस प्रकार हम भी एक दूसरे को सहारा दें। आसपास ऐसे रिश्तों को मजबूत बनाएं। और जीवन को संवारें।

साथिनें संघर्ष जारी रखेंगी

मणिमाला

राजस्थान के साथिन आंदोलन से हम आप सब परिचित हैं। साथिनों को जानते हैं। उनके काम को जानते हैं। उनके संघर्ष को जानते हैं। हम सबको यह भी पता है कि यह 'साथिन आंदोलन' एक सरकारी कार्यक्रम है। इसका सरकारी नाम है "महिला विकास कार्यक्रम"। पर लोग इसे साथिन आंदोलन कहते है। क्यों? इसलिए कि इस कार्यक्रम को साथिनों ने शुरू किया। साथिनों ने चलाया। साथिनो ने इसकी पहचान बनाई। उनकी कठिन मेहनत का ही नतीजा है कि लोगों ने इसे नया नाम दे दिया—साथिन आंदोलन।

सरकार ने ही यह कार्यक्रम शुरू किया था। अब सरकार ही इसे तोड़ रही है। सरकार इसे सिर्फ कार्यक्रम के रूप में चलाना चाहती थी। लोगों ने समर्थन दिया। साथिनों ने काम किया। और यह कार्यक्रम आंदोलन बन गया। कहीं बाल विवाह की परंपरा के ख़िलाफ़। कहीं बलात्कार के ख़िलाफ़। कहीं मजदूरी पाने के लिए। कहीं अनाज के सही बंटवारे के लिए।

कार्यक्रम कागज पर या जमीन पर

सरकार को ऐसा जुझारू कार्यक्रम नहीं चाहिए। या सिर्फ कागज पर चाहिए। जमीन पर नहीं। इसीलिए उन सबको हटाने का फैसला कर लिया गया है। उन साथिनों को सरकार हटायेगी जिन्होंने पिछले पांच सालों से अपना खून पसीना बहाया है। जुल्म के खिलाफ लड़ी हैं। जुल्म सहे हैं। परंपराओं को तोड़ा है। तुड़वाया है। घर-गृहस्थी के काम संभालते हुए गांव को बेहतर बनाने के लिए हाड़तोड़ मेहनत की। बेहतर समाज के सपने देखे। उन्हें सच करने के लिए खून-पसीना बहाया। उन साथिनों की जरूरत अब नहीं रही।

क्या विकास पूरा हो गया?

हम-आप पूछ सकते हैं कि क्या राजस्थान में विकास का काम पूरा हो गया। जोर-जुल्म खत्म हो गये। लड़कियों की पढ़ाई का काम पूरा हो गया। बाल विवाह होने बंद हो गये। जवाब मिलेगा-'नहीं'। फिर सरकार भी कहती है कि काम फैलाना है, इसलिए पुरानी साथिनों को हटाना होगा। उनकी जगह नये गांव होंगे। नई साथिनें होंगी। सिर्फ पांच साल के लिए। क्यों? साथिनें ज्यादा दिन रह जाती हैं तो सरकार चलाने में मुश्किल होती है। आज हम इन्हीं सवालों पर चर्चा करेंगे।

इस राज्य में कुल 37 हजार गांव हैं। इसमें से डेढ़ हजार गांव ऐसे हैं जहां एक भी औरत को पढ़ना-लिखना नहीं आता। पूरे राज्य में सिर्फ 20.8 प्रतिशत औरतों को ही पढ़ना लिखना आता है।

सरकार ने महिला विकास कार्यक्रम शुरू किया था। इस कार्यक्रम ने रूप ले लिया 'साथिन आंदोलन' का। अब सरकार ही इसे तोड़ रही है। सरकार को ऐसा जुझारू कार्यक्रम नहीं चाहिए। या सिर्फ कागज पर चाहिए, जमीन पर नहीं। इसलिए उन सभी साथिनों को सरकार हटायेगी जिन्होंने पिछले पांच सालों से अपना खून-पसीना बहाया है। जुल्म के खिलाफ लड़ी हैं। जुल्म सहे हैं। परंपराओं को तोड़ा है। बेहतर समाज के सपने देखे। हाड़तोड़ मेहनत की। इन साथिनों की जरूरत अब नहीं रही।

पूरे देश में जितने बाल विवाह होते हैं उसमें से 60 प्रतिशत सिर्फ राजस्थान में होते हैं। औरतों को प्रसव की सुविधा अभी भी उपलब्ध नहीं है। सिर्फ दस प्रतिशत प्रसव अस्पतालों में होते हैं। बाकी घरों में। ज्यादातर प्रसव कराने वाली औरतों की कोई ट्रेनिंग तक नहीं होती।

भारी संख्या में बच्चों की मौत होती है। यहां हर दो मिनट में एक बच्चा दस्तों से मरता है। जीवन रक्षक घोल की जानकारी भी कम औरतों को है। लड़कियों को जन्म लेते ही मार डालने का रिवाज कुछ इलाकों में है। गांव में बेटियों को पैदा होने के बाद मार डालते हैं। शहरों में पेट में ही मार डालते हैं। फिर भी सरकार को लगता है इन गांवों में विकास का काम पूरा हो चुका है।

कार्यक्रम की शुरुआत

''यूनिसेफ'' के सहयोग से राजस्थान में महिला विकास कार्यक्रम शुरू किया था। सन् 1984 में। छह जिलों में शुरुआत हुई थी। पूरा खर्च ''यूनिसेफ'' उठा रहा था। पांच साल बाद ''यूनिसेफ'' ने यह कार्यक्रम राज्य सरकार को सौंप दिया। 1990 में 14 और जिलों में इसे लागू किया गया। हाल ही में 21 जिलों में फैलाया गया। अब 31 जिलों में ले जाने की योजना है।

कार्यक्रम को फैलाने से किसी को ऐतराज नहीं है। पर यह किसी को समझ में नहीं आ रहा कि पहले से कार्य कर रही साथिनों को हटाना क्यों जरूरी हो गया है। सरकार का कहना है कि पैसे की कमी है। पैसे की कमी की वजह से पुरानी साथिनों को हटाया जायेगा। उससे जो पैसा बचेगा वह नये गांवों में नई साथिनों को दिया जायेगा।

कड़वा सच

वास्तव में सच्चाई यह नहीं। सच्चाई तो कुछ और है। साथिनों ने जितनी लगन से काम किया वह सरकार को अच्छा नहीं लगा।

चेतना जगाने का नाटक तो ठीक है। लेकिन चेतना आने लगे तो गलत। साथिनों ने गांवों में कुछ ऐसा माहौल बना रखा था कि व्यवस्था कांप गई थी। हर जगह अधिकारों की चर्चा। अधिकारों की मांग। लोग अधिकार जानेंगे तो मांगेंगे। मांगने पर नहीं मिलेगा तो लड़ेंगे। सरकार बदलने को तैयार नहीं। समाज का एक तबका बदलने को तैयार है। दूसरा नहीं। ऐसे में मुश्किल हो रही है।

भंवरी बाई भी एक साथिन है। हम सब जानते हैं कि उसके साथ 1992 में बलात्कार हुआ था। गांव के ही ताकतवर लोगों ने किया था। वह चुप नहीं रही। लड़ी। खूब लड़ी। सभी साथिनों ने साथ दिया। महिला संगठनों ने भी साथ दिया। संघर्ष

अभी तक चल रहा है। उसकी आवाज को दबाने की कोशिश भी चल रही है।

बहिष्कार

हाल ही में बस्सी पंचायत के नये सरपंचों ने सभी साथिनों का हुक्का पानी बंद करने का फैसला किया है। उन्होंने एक बैठक की। उसमें तय किया गया कि साथिनों ने गांव को बदनाम किया है। भंवरी बाई का साथ देकर बस्सी पंचायत को बदनाम किया है। भंवरी बाई पर मुकदमा वापस लेने के लिए भी दबाव डाला गया। वापस न लेने पर साथिनों के बहिष्कार का फैसला किया गया। सारे अखबारों में यह खबर छपी। सरकार ने कुछ नहीं किया। महिला विकास कार्यक्रम के बड़े अफसरों ने भी कुछ नहीं किया। जाहिर है कि जुझारू साथिनें गांव के दबंग लोगों को रास नहीं आ रहीं।

इन्हीं के दबाव में सरकार ने साथिनों के जुझारूपन को कम करने का फैसला किया है। पांच साल के बाद साथिनों को हटा दिया जायेगा। यानि पांच साल के बाद उन्हें काम की कोई सुविधा नहीं दी जायेगी। उनकी जिम्मेदारी कोई नहीं लेगा। ऐसे कैसे गांव की औरतें बाहर निकल पायेंगी। कैसे लड़ पायेंगी कुरीतियों से। कैसे लोगों को उनके अधिकारों के बारे में बता पायेंगी। कैसे वे तन कर खड़ी हो पायेंगी। जब स्वयं ही नहीं अड़ पायेंगी तो दूसरों को अड़ना कैसे सिखायेंगी।

सभी साथिनें सरकार की इस नीति के खिलाफ एकजुट होकर लड़ रही हैं। 14 अप्रैल को उन्होंने जयपुर में एक सम्मेलन किया। उन्होंने संकल्प लिया कि वे अपनी लड़ाई जारी रखेंगी। □

सरकार ने महिला विकास कार्यक्रम शुरू किया था। इस कार्यक्रम ने रूप ले लिया 'साथिन आंदोलन' का। अब सरकार ही इसे तोड़ रही है। सरकार को ऐसा जुझारू कार्यक्रम नहीं चाहिए। या सिर्फ कागज पर चाहिए, जमीन पर नहीं। इसलिए उन सभी साथिनों को सरकार हटायेगी जिन्होंने पिछले पांच सालों से अपना खून-पसीना बहाया है। जुल्म के खिलाफ लड़ी हैं। जुल्म सहे हैं। परंपराओं को तोड़ा है। बेहतर समाज के सपने देखे। हाड़तोड़ मेहनत की। इन साथिनों की जरूरत अब नहीं रही।

पूरे देश में जितने बाल विवाह होते हैं उसमें से 60 प्रतिशत सिर्फ राजस्थान में होते हैं। औरतों को प्रसव की सुविधा अभी भी उपलब्ध नहीं है। सिर्फ दस प्रतिशत प्रसव अस्पतालों में होते हैं। बाकी घरों में। ज्यादातर प्रसव कराने वाली औरतों की कोई ट्रेनिंग तक नहीं होती।

भारी संख्या में बच्चों की मौत होती है। यहां हर दो मिनट में एक बच्चा दस्तों से मरता है। जीवन रक्षक घोल की जानकारी भी कम औरतों को है। लड़कियों को जन्म लेते ही मार डालने का रिवाज कुछ इलाकों में है। गांव में बेटियों को पैदा होने के बाद मार डालते हैं। शहरों में पेट में ही मार डालते हैं। फिर भी सरकार को लगता है इन गांवों में विकास का काम पूरा हो चुका है।

कार्यक्रम की शुरुआत

''यूनिसेफ'' के सहयोग से राजस्थान में महिला विकास कार्यक्रम शुरू किया था। सन् 1984 में। छह जिलों में शुरुआत हुई थी। पूरा खर्च ''यूनिसेफ'' उठा रहा था। पांच साल बाद ''यूनिसेफ'' ने यह कार्यक्रम राज्य सरकार को सौंप दिया। 1990 में 14 और जिलों में इसे लागू किया गया। हाल ही में 21 जिलों में फैलाया गया। अब 31 जिलों में ले जाने की योजना है।

कार्यक्रम को फैलाने से किसी को ऐतराज नहीं है। पर यह किसी को समझ में नहीं आ रहा कि पहले से कार्य कर रही साथिनों को हटाना क्यों जरूरी हो गया है। सरकार का कहना है कि पैसे की कमी है। पैसे की कमी की वजह से पुरानी साथिनों को हटाया जायेगा। उससे जो पैसा बचेगा वह नये गांवों में नई साथिनों को दिया जायेगा।

कड़वा सच

वास्तव में सच्चाई यह नहीं। सच्चाई तो कुछ और है। साथिनों ने जितनी लगन से काम किया वह सरकार को अच्छा नहीं लगा।

चेतना जगाने का नाटक तो ठीक है। लेकिन चेतना आने लगे तो गलत। साथिनों ने गांवों में कुछ ऐसा माहौल बना रखा था कि व्यवस्था कांप गई थी। हर जगह अधिकारों की चर्चा। अधिकारों की मांग। लोग अधिकार जानेंगे तो मांगेंगे। मांगने पर नहीं मिलेगा तो लड़ेंगे। सरकार बदलने को तैयार नहीं। समाज का एक तबका बदलने को तैयार है। दूसरा नहीं। ऐसे में मुश्किल हो रही है।

भंवरी बाई भी एक साथिन है। हम सब जानते हैं कि उसके साथ 1992 में बलात्कार हुआ था। गांव के ही ताकतवर लोगों ने किया था। वह चुप नहीं रही। लड़ी। खूब लड़ी। सभी साथिनों ने साथ दिया। महिला संगठनों ने भी साथ दिया। संघर्ष

अभी तक चल रहा है। उसकी आवाज को दबाने की कोशिश भी चल रही है।

बहिष्कार

हाल ही में बस्सी पंचायत के नये सरपंचों ने सभी साथिनों का हुक्का पानी बंद करने का फैसला किया है। उन्होंने एक बैठक की। उसमें तय किया गया कि साथिनों ने गांव को बदनाम किया है। भंवरी बाई का साथ देकर बस्सी पंचायत को बदनाम किया है। भंवरी बाई पर मुकदमा वापस लेने के लिए भी दबाव डाला गया। वापस न लेने पर साथिनों के बहिष्कार का फैसला किया गया। सारे अखबारों में यह खबर छपी। सरकार ने कुछ नहीं किया। महिला विकास कार्यक्रम के बड़े अफसरों ने भी कुछ नहीं किया। जाहिर है कि जुझारू साथिनें गांव के दबंग लोगों को रास नहीं आ रहीं।

इन्हीं के दबाव में सरकार ने साथिनों के जुझारूपन को कम करने का फैसला किया है। पांच साल के बाद साथिनों को हटा दिया जायेगा। यानि पांच साल के बाद उन्हें काम की कोई सुविधा नहीं दी जायेगी। उनकी जिम्मेदारी कोई नहीं लेगा। ऐसे कैसे गांव की औरतें बाहर निकल पायेंगी। कैसे लड़ पायेंगी कुरीतियों से। कैसे लोगों को उनके अधिकारों के बारे में बता पायेंगी। कैसे वे तन कर खड़ी हो पायेंगी। जब स्वयं ही नहीं अड़ पायेंगी तो दूसरों को अड़ना कैसे सिखायेंगी।

सभी साथिनें सरकार की इस नीति के खिलाफ एकजुट होकर लड़ रही हैं। 14 अप्रैल को उन्होंने जयपुर में एक सम्मेलन किया। उन्होंने संकल्प लिया कि वे अपनी लड़ाई जारी रखेंगी। □

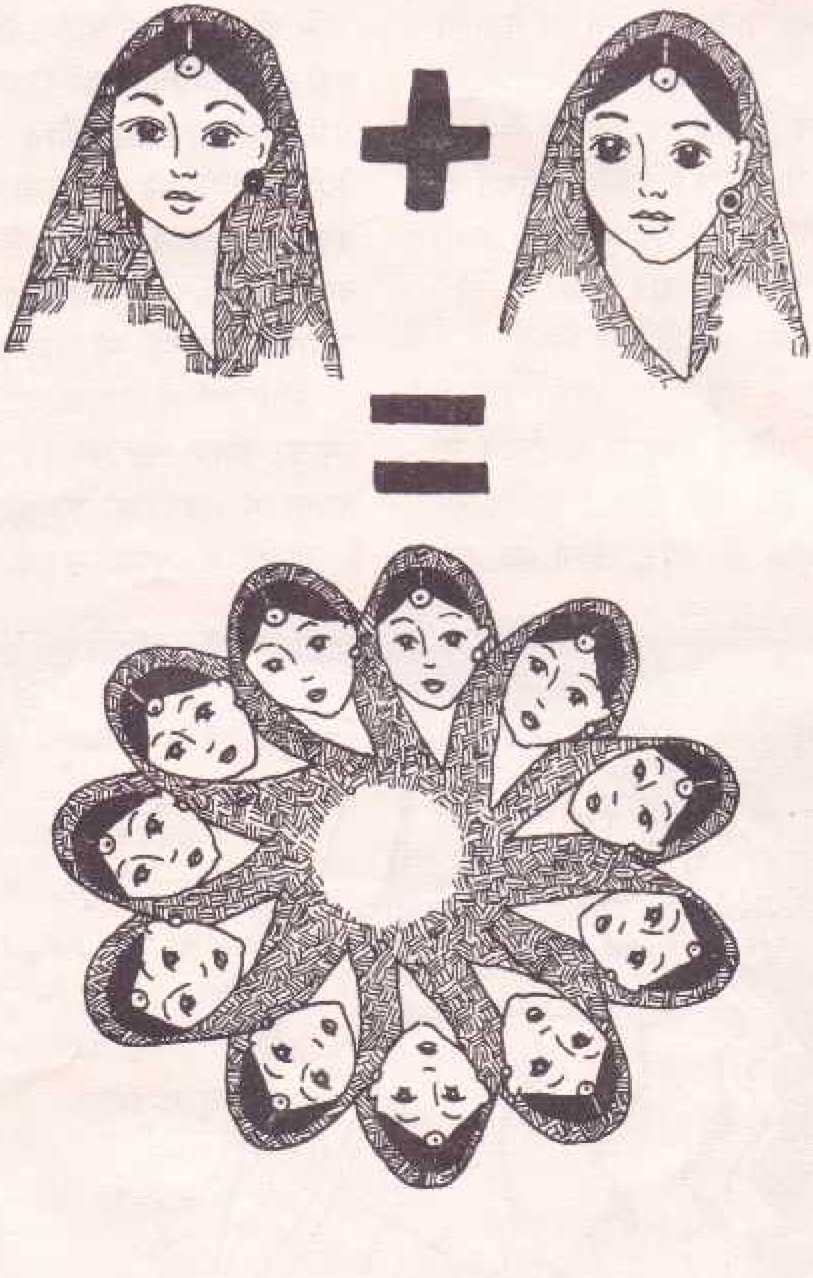

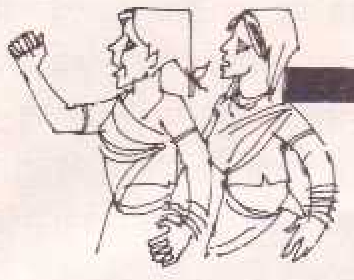

एक-एक से ग्यारह भले

जुही

रमजान की झोपड़ी से जोर-जोर से चीखने की आवाज आ रही थी। 'बचाओ, मार दिया।' 'अरे कोई तो आओ, मेरी मदद करो।' पूरे गांव ने सुना पर रमजान की मदद को कोई नहीं आया। हर औरत को लग रहा था कि मार उसे ही पड़ रही है, पर बाहर निकलने का साहस कोई नहीं जुटा पा रही थी। श्यामा ने हिम्मत करके अपने पति से कहा भी, "देखो, जाकर सलीम को रोको, रमजान बेचारी मर जाएगी।" पर उसका पति उल्टा उस पर ही चिल्लाने लगा। "चुप बैठ, वरना तुझे भी दो हाथ दूंगा खींच के। ज्यादा वकालत करने चली है।" बेचारी श्यामा चुपचाप रह गई।

रोज का सिलसिला

रानीपुर गांव में यह किस्सा कोई पहली बार नहीं हुआ था। यह रोज़ की ही बात थी। आज रमजान पिटी थी, कल राजी का उसके मर्द ने सर फोड़ दिया था। कल न जाने किस पर कहर बरपेगा। रोज किसी न किसी औरत के सर पर पट्टी बंधी होती। या फिर किसी के बदन पर नील होते। किसी के हल्दी-चूना लगा होता, तो कोई लंगड़ा कर चल रही होती।

करें भी तो क्या?

औरतें एक दूसरी का दुख समझती थीं। मिलकर आपस में सेंक-पोंछ और दवा-दारू करतीं। एक-दूसरी को ढांढस बंधातीं। वे और कर भी क्या सकती थीं। किसी के पास खाने को नहीं होता तो मिल-बैठकर उसे खाना खिलातीं। साझे दुखों ने उन्हें एक दूसरी के साथ एक गहरे रिश्ते में बांध दिया था। उनमें एकता और सहारा देने की भावना थी।

गांव के मर्द मुखिया मज़दूरी करने पास की मिल में जाते। पैसे कमाते। शाम ढले ठर्रा पीकर झूमते हुए घर आते, जुआ खेलते। बीवी-बच्चों के साथ मार-पीट करते। गाली-गलौज करते। खर्राटे लेकर सोते। और औरतें रात भर बेचारी सिसकती रहतीं। सुबह फिर रोटी-पानी, चारा-लकड़ी के चक्कर में सब भूल जातीं। अपनी किस्मत का दोष मानकर घुट-घुट जीती रहतीं।

आशा की किरण

गांव के मास्टर जी के बेटे का ब्याह हुआ। शहर से पढ़ी लिखी बहू आई। यह गांव के लिए बहुत बड़ी बात थी। गांव की लड़कियां पढ़ती नहीं थीं। स्कूल में पढ़ने को लड़के ही जाते थे। लड़कियों का पढ़ना-लिखना बुरा माना जाता था। मास्टर जी ने बहुत कोशिश की थी, पर लोग टस से मस नहीं हुए थे।

मास्टर जी की बहू ऊषा मोटी-मोटी किताबें पढ़ती। अखबार पढ़ती। मास्टर जी के साथ

देश-विदेश की बड़ी-बड़ी बातों पर तर्क-वितर्क करती। और तो और, स्कूल जाकर बच्चों को भी यदा-कदा पढ़ा देती।

पानी भरने कुएं पर जाती तो औरतों से बोलने-चालने की कोशिश करती। उन्हें शहर के बारे में बताती। नई जानकारी देती। दुख-तकलीफ में उन्हें दवा-दारू, रुपए-पैसे और प्यार से सहारा देती। कुछ ही समय में उसने सबसे रिश्ता बना लिया। कोई मामी बनी, कोई चाची, कोई दादी तो कोई भाभी। सब औरतें उसे खूब प्यार-सम्मान देतीं। उन्हें अब लगता वह भी उनके जैसी ही है। पहले सब उसे घमंडी, बुरी समझती थीं, अब वही उसकी तारीफ करते नहीं अघाती थीं।

पहली बैठक

जिस दिन रमजान की पिटाई हुई उस दिन ऊषा अपने पति के साथ पास के गांव में शादी पर गई थी। दूसरे दिन सुबह उसे खबर लगी। फौरन रमजान के घर पहुंची। उसकी देखभाल की। रमजान के हाथ की हड्डी टूट गई थी।

फिर सुझाव दिया। आज हम सब दोपहर को अपना काम खत्म करके उसके घर मिलेंगी। अपना सुख-दुख बांटेंगी। और सोचेंगी कि इस रोज की परेशानी से कैसे निपटा जाए।

दोपहर होते ही सब ऊषा के घर पहुंचीं। सबके मन में एक ही बात थी। कब तक सहेंगी ये सब। हम कोई जानवर तो नहीं हैं। हमें भी जीने का हक़ है। ऐसा अत्याचार अब बिलकुल बर्दाश्त नहीं करना है। बस, फैसला हो गया। मिलकर मुकाबला करेंगे।

जैसे को तैसा

शाम हुई। दारू में झूमते-गाते मर्द आए। किसी भी औरत ने अपने घर का दरवाजा नहीं खोला। आदमियों ने खूब शोर मचाया। गाली-गलौज की। दरवाजे पर लातें-डंडे बरसाए पर औरतें तो जैसे बहरी हो गई थीं। श्यामा के पति ने किसी तरह दरवाजा तोड़ दिया। बाल पकड़कर श्यामा को बाहर लाने के लिए बढ़ा ही था कि श्यामा ने डंडे से उसकी जमकर पिटाई की। पति को यह उम्मीद नहीं थी। उसका सारा नशा काफूर हो गया।

एक की पिटाई क्या हुई। सब थोड़े हैरान हो गए। मास्टर जी के घर पहुंचे। अपना दुखड़ा रोया। पर मास्टर जी ने कोई भी मदद से साफ इंकार कर दिया। खैर, किसी तरह रात गुजरी। भूखे-प्यासे सुबह फिर काम पर निकल गए। शाम लौटे तो फिर वही हाल। बस, सब आग-बबूला हो गए। फिर मास्टर जी के पास पहुंचे। फैसला कराने की बात रखी।

सब औरतों को बुलाया गया। औरतों ने अपनी मांगें सामने रखीं। हमारे साथ मारपीट नहीं होगी। जो मर्द शराब पीकर आएगा उसे घर में नहीं घुसने दिया जाएगा।

मर्दों ने वचन दिया। मारपीट नहीं करेंगे। दारू नहीं पीएंगे। हाथ जोड़ सबने औरतों से माफी मांगी।

और वे जीत गईं

अगले दिन सब औरतें फिर ऊषा के घर मिलीं। अपनी जीत पर खुश थीं। वह चूंकि आपस में एक थीं इसलिए उनमें एक नई ताकत का एहसास था। उन्हें मालूम हो गया था अपना हक कैसे पाना है। सबकी आंखों में आंसू थे। खुशी के। गम के नहीं। और ऊषा, उसने तो जैसे अपनी पढ़ाई आज पूरी की थी। □

राजनीति में औरतों की सक्रिय भागीदारी हो

वीणा शिवपुरी

हाल में कुछ प्रदेशों में हुए चुनावों के दौरान कई बातें सामने आईं। हर राजनीतिक पार्टी ने अपने भाषणों और घोषणापत्रों में औरतों का ज़िक्र किया। उनकी ताक़तमंदी के कार्यक्रम चलाने से लेकर उनके लिए हर जगह सीटें आरक्षित करने की बात की। अब तक जिन्हें कोई अहमियत नहीं दी जाती थी। जिनका वोट पाने के लिए उनके मर्दों से बात करना काफ़ी समझा जाता था। अब सीधे उन्हें संबोधित किया गया। यहां अहम बात राजनीतिक पार्टियों की ईमानदारी नहीं, बल्कि वह मजबूरी है जिसके तहत उन्हें औरतों को महत्व देने की बात करनी पड़ रही है। यह अपने आप में मील का पत्थर है।

इन चुनावों से एक़ और बात सामने आई। पिछले वर्षों में महिला वोटरों की गिनती बहुत बढ़ी है। इसके पीछे गैर-सरकारी संस्थाओं की मेहनत, औरतों में बढ़ती जागरूकता आदि हैं। अब औरतें बहुत बड़ी संख्या में वोट देने आती हैं। अब उनके वोट उनके परिवार के मर्दों के कब्जे में नहीं हैं। खुशी की बात यह भी है कि औरतें वोट बेचने को तैयार भी नहीं हैं। इस तरह का वोटर किसी भी राजनीतिक दल के लिए चुनौती होता है। उसे नज़र-अंदाज नहीं किया जा सकता।

भविष्य की तस्वीर

अब साफ समझ में आ रहा है कि आने वाले समय में सभी राजनीतिक दल महिला वोटरों को लुभाने की पूरी कोशिश करेंगे। इस प्रकार औरतों तथा उनके साथ काम करने वाली संस्थाओं की ज़िम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है। अगले साल होने वाले आम चुनावों तक औरतों में राजनीतिक जागरूकता फैलाने का काम लगातार होना चाहिए।

राजनीतिक समझ चार दिन में नहीं आती। उसके लिए अपने वोट का महत्व, अपने हक़ों की जानकारी होना ज़रूरी है। राजनीतिक दलों के घोषणापत्रों को उनके काम की कसौटी पर कसना पड़ेगा। अपनी ज़रूरतों और मांगों की प्राथमिकता तय करनी होगी। ताकि चुनाव के समय अलग-अलग दलों का लेखा जोखा किया जा सके। अपनी मांगें उनके सामने रखी जा सकें। बाद में जवाब-तलबी की जा सके।

भविष्य में औरतें चुनावी राजनीति में एक बड़ी ताकत के रूप में उभर सकती हैं। ज़रूरत है काफ़ी मेहनत की, ताकि वे अपनी ताक़त का इस्तेमाल अपने फ़ायदे के लिए कर पाएं।

राजनीति में सक्रिय भागीदारी

अब एक और बड़े बदलाव का समय आ गया है। औरतें सिर्फ़ वोट देने और सहूलियतें मांगने वाली न रहें। वोटर की हैसियत से उनकी भूमिका ज़रूर महत्वपूर्ण है। परंतु अब समय है राजनीतिक अखाड़े में कूदने का। गांव से लेकर देश के स्तर तक राजनीति में भागीदारी करने का।

आज तक जो भी औरतें राजनीति में आई हैं वो किसी की बेटी, बहन या पत्नी के रूप में। लेकिन अपने काम से उन्होंने यह ज़रूर साबित कर दिया कि वे राजनीतिक दांव-पेंच में किसी से कम नहीं। अब ज़रूरत है कि वे अपनी इच्छा से, समझ-बूझ कर स्वतंत्र रूप से इसे अपना पेशा चुनें।

पंचायती राज कानून के 1993 के संशोधन के तहत औरतों के लिए 30 प्रतिशत सीटें आरक्षित हैं। यह अपने आप में बड़ा कदम है। इसका फायदा उठाते हुए औरतों को अपनी राजनीतिक भागीदारी की शुरुआत बड़े पैमाने पर कर देनी चाहिए।

यह सही है कि आरक्षण के बावजूद वर्ग, जाति जैसे कई मुद्दे सामने खड़े होंगे। कई मामलों में औरतें सिर्फ़ नाम के लिए चुनाव लड़ेंगी और जीतेंगी। असली खेल पीछे से उनके मर्द खेलेंगे। इन सभी खतरों के प्रति सावधान रहने की ज़रूरत है।

पंचायत में चुनी जाने वाली औरतों के पास अनुभव, जानकारी और आत्मविश्वास की कमी भी हो सकती है। इन सभी रुकावटों को पार करते हुए आगे बढ़ना है। □

तुमकुर का पंचायती राज

पंचायती राज अधिनियम पास हुआ। लोगों की उम्मीदें जागीं। औरतों की भागीदारी राजनीति में सक्रिय रूप से होने की आशा बंधी। पर ऐसा नहीं हुआ। मूल्यांकन से पता चला ज्यादातर चुनाव अभियान पार्टी आधारित थे। लिहाज़ा महिला संगठनों की इनमें कोई भूमिका नहीं थी। सामाजिक बंधनों, पैसे की कमी के कारण भी वे बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने से सकुचाती हैं। पर कर्नाटक के तुमकुर ज़िले का उदाहरण इससे बिलकुल विपरीत है।

बंगलौर से सौ किलोमीटर दूर स्थित है तुमकुर ज़िला। इस सूखे-पिछड़े इलाके में 1693 औरतें चुनी गई हैं। और इन सभी औरतों को पूरा ज़िला प्रशासन जोर-शोर से सशक्त और जागरूक बनाने में लगा है। आइए देखें, कैसे?

यहां के ज़िला अधिकारियों ने इसके लिए 23 से 26 अक्तूबर तक चार दिनों का कार्यक्रम तय किया। लगभग पचास प्रतिशत घरों को मुख्यालय में बदला गया। साथ ही घरों को अच्छी तरह से सजाया-संवारा भी गया।

ज्यादातर चुनी गई सभी औरतें इस कार्यक्रम में शामिल हुईं। कार्यसूची बनाने, कार्यकर्ता और संपर्क सूत्र जुटाने और कार्यक्रम चलाने तक की व्यवस्था की जिम्मेवारी इलाके के एन.एल.एम. अधिकारियों ने उठाई।

ताक़त का अहसास

औरतें इस कार्यक्रम के प्रति बहुत उत्साहित थीं। कार्यक्रम के दौरान निर्वाचित औरतों के रहन-सहन के विभिन्न तरीकों को लेकर चर्चा हुई। औरतों को लगा कि पंचायती राज में महिलाओं की सीट आरक्षित होने की वजह से उन्हें घर-बाहर की दुनिया देखने-समझने का मौका मिला। कई औरतों का कहना था कि अगर आरक्षण वापस भी ले लिया जाए तब भी वह अपने अधिकार वापस लेंगी। पुरुषों से मुकाबला करेंगी। बिना आरक्षण चुनाव लड़ेंगी।

उन्हें लगा कि वे भी पुरुषों की तरह काम कर सकती हैं। आरक्षण से उन्हें जो मौका मिला है उसका पूरा-पूरा फ़ायदा उठाकर उसका सदुपयोग वे ज़रूर करेंगी। यह ज़िम्मेवारी बोझ न बन जाए या फिर थोड़े दिन के बाद उनका उत्साह ठंडा न पड़ जाए, इसलिए वे इसके लिए अलग से समय निकालती हैं। घर का काम जल्दी से निपटा कर बैठक में आती हैं। बैठक में समय से पहुंचने के लिए काम छोड़ भी देती हैं।

विरोध का सामना

ऐसा नहीं है कि इन औरतों को परेशानी का सामना नहीं करना पड़ रहा। एक औरत ने बताया कि शुरू में उसके पति ने उसे पंचायती राज की सदस्या बनने के लिए उत्साहित किया। पर जब देखा कि वह सक्रिय हो गई तब उसे रोकने की कोशिश करने लगे।

ग्राम सभा की महिलाओं को भी पंचायत सदस्याओं से शिकायत है। उनका मत है कि सभी सदस्य वोट तो मांगते हैं पर बदले में कुछ नहीं करते। इस टिप्पणी से एक पंचायत सदस्या बहुत शर्मिंदा हुई। बाद में उन्होंने अपने खर्चे से सड़क पर बिजली लगवाई।

एक अन्य औरत का कहना है कि भाषा न समझ पाने के कारण उनके पति उनके साथ सभी बैठकों में जाते हैं। इसी गांव में एक हरिजन निर्वाचित महिला को अध्यक्षा ने बहुत दबा-धमका कर रखा था। यह अध्यक्षा भी हरिजन थी, पर पढ़ी-लिखी और वाचाल।

फिर भी पंचायत की सदस्याएं सजग, सचेत लगीं। पंचायत के सातों गांवों में उन्होंने ग्राम सभा की बैठक आयोजित की। ये औरतें मेधावी और मुखर हैं। पर पूरी तरह पंचायत के और अपने अधिकारों के बारे में जानकारी उन्हें मुहैया नहीं थी। देश के दूसरे भागों में क्या हो रहा है, इस पर भी उनके पास कोई खबर नहीं थी।

फिर भी कार्यक्रम की गतिशीलता और कोशिशों को नज़र-अंदाज नहीं किया जा सकता। कार्यक्रम से औरतों में आपसी स्नेह और आत्मीयता बढ़ी है। जो औरतें इस बार कार्यक्रम में हिस्सा नहीं ले सकीं उन्होंने निश्चय किया कि वे अगली दफा इस मौके को हाथ से नहीं जाने देंगी। जो इस बार चुनाव में नहीं खड़ी हुईं वे अगले साल चुनाव लड़ने का मन बना रही हैं। □

जानकारी साभार ISST समाचार पत्रिका से

एक प्रार्थना—कोख में से

आज तुम इतनी चुप क्यों हो मां?
शायद तुम्हारे मन में उथल-पुथल मची है
जांच से तुम जान गई हो मैं एक लड़की हूं!
पर मां, मैं उससे अधिक बहुत कुछ हूं
मैं हूं तुम्हारा ही एक हिस्सा
एक अलग पहचान लिए तुम्हारी बेटी
तुम दुनिया को बता दो
मैं ज़िंदा रहना चाहती हूं।
मैं इस समय अपनी रक्षा आप नहीं कर सकती
पर जीवित रहना मेरा अधिकार है
तुम हर रात मुझसे बातें करती हो
तुम्हें मुझ पर भरोसा है
तुम मुझसे वह सब कहती हो
जो तुम औरों से नहीं कह पातीं
तुम चाहती थीं कि मैं आऊं
पिछली रात मैंने तुम्हारी सुबकियां सुनीं
मैं तुम्हारे गर्भ में पलने वाला बच्चा मात्र थी
चाहे लड़का या लड़की
तुमने उनसे कहा था तुम्हें मेरी ज़रूरत है
क्या तुम्हारी बात कोई समझ सका?
मैं वादा करती हूं अपना प्यार निभाऊंगी
सिर्फ एक अवसर दो मुझे जीने का
मां, तुम्हारा फैसला ही मेरे लिए एक दुनिया है।

मनीषा वर्मा

अनुवाद—अनुराधा गुप्ता

गौतम और राम

गौतम और राम में
एक समझौता है
जब गौतम का क्रोध
भड़कता है
अहिल्या औरत से
पत्थर बनती है
जब राम दया से
भरता है
अहिल्या पत्थर से
औरत बनती है
इनके ही दया/क्रोध
निर्णायक हैं
कि अहिल्या औरत या
पत्थर बनने लायक है

—मणि

आत्म निर्भरता
न्याय पूर्ण समाज
अधिकार
सुरक्षा
सम्मान पूर्ण जीवन
साक्षरता